❀ विषय-सूची ❀

प्रण-वीर

प्रथम परिच्छेद

कमलकुमारी

अरावली पर्वत के एक भाग से लगा हुआ बड़ा गहन वन है। इसके बड़े बड़े वृक्ष इतनी सघनता से खड़े हुए हैं कि मध्याह्नकाल के सूर्य की किरणों का इन वृक्षों की घनी छाया के भीतर प्रवेश करना केवल असंभव है। वास्तव में, वन के इस भाग में भीलों को छोड़कर अन्य किसी मनुष्य को रहने की हिम्मत नहीं होती। किन्तु किन्हीं किन्हीं स्थानों में कोई सिद्ध पुरुष तप करते हुए दिखाई देते हैं। प्रायः नगरनिवासी लोग यथा-संभव इस भाग में नहीं आते। सृष्टि का भयानक, रौद्र स्वरूप इस जगह दिखाई देता है और जब कभी वन के हिंसक पशु आहार की खोज में इधर उधर गर्जना करते हुए घूमते हैं तो उस भयानकता का विशेष रूप से अनुभव होता है। ऐसे इस वन में शाके १५६२ कार्तिक सुदि ६ के रोज प्रातःकाल के समय एक बैलगाड़ी चली जारही है। साथ ही उसके केसरिया रंग के वस्त्र पहने हुए चार राजपूत तथा कालकूट से भी अधिक कृष्णवर्ण और करालमुख चार भील जारहे हैं। एक बड़े ऊँचे घोड़े पर सवार एक वृद्ध राजपूत उन सबके आगे है और उसके शरीर पर केसरिया रंग का एक अँगरखा पड़ा है। उसके हाथ में एक तलवार है जिसकी म्यान भी केसरिया रंग की

ही है। मुख भव्य और तेजोयुत है, किन्तु वृद्धावस्था के कारण उस पर झूर्रियाँ दिखाई देती हैं।

इस समय वह चिन्ता में ग्रस्त मालूम होता है—किसी दुःख से उसका अंतःकरण मानों दग्ध हुआ जा रहा हो। उस गाड़ी में जुते हुए बैलों की घंटियों व घोड़ों की टापों की आवाज अथवा प्रातःकाल होने पर आहार की तलाश में निकलने से पूर्व अपने निवासस्थान वृक्षों पर ही बैठे हुए नवजागृत पक्षियों के अतिमधुर कलरव के अतिरिक्त दूसरा कोई भी शब्द उस स्थान में सुनाई नहीं देता। न तो बैलगाड़ी के साथ चलने वाले लोग ही आपस में किसी प्रकार की बातचीत करते हैं और न उसके भीतर से ही किसी के बोलने की आवाज आती है। इस बैलगाड़ी को 'बैलगाड़ी' कहने की अपेक्षा 'रथ' कहना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि वह छोटी तथा प्राचीन काल के रथ के आकार की है और उसके ऊपर देवालय के ऊपरी भाग की तरह एक गुम्बज है जिस पर का सुन्दर कलश ठीक वैसा ही है जैसे कि रथ के चारों कोनों वाले अन्य कलश हैं। रथ चारों ओर से परदे से ढका हुआ है। इस परदे के बीच में जालीदार कपड़ा लगा है जिसके कारण साधारण ऊँचाई वाला मनुष्य भीतर ही बैठा हुआ बाहर का तमाम दृश्य देख सकता है। इसके देखने से सहज ही अनुमान होता है कि इसके भीतर कोई जनानी सवारी बैठी है।

प्रातःकाल का समय है और बैल बड़े वेग से अपनी घंटियों के ताल पर दौड़े चले जारहे हैं। प्रत्येक मनुष्य चिन्ताग्रस्त और दुःखित दिखाई देता है। जानवरों को छोड़कर किसी के भी शरीर

में उत्साह या चेहरे पर प्रसन्नता नाम तक को नहीं है। यद्यपि चारों ओर वन की शोभा विशेष रूप से दर्शनीय है तथापि चलने वालों में से किसी का भी शोकाकुल हृदय उस ओर आकर्षित नहीं होता। वे केवल अपनी यात्रा पूरी करने में दत्तचित्त हैं।

लगभग आधा पहर बीतने पर आगे के वृद्ध राजपूत ने घोड़े को पीछे घुमाकर एक राजपूत सिपाही से धीरे से पूछा, "पद्मनाथ फिर यहाँ से वह जगह कितनी दूर है? तुम्हारे कहने के अनुसार तो अब तक हम लोग उस स्थान तक पहुँच गये होते परन्तु अभी तक तुम्हारे बताए हुए चिन्हों का कहीं भी पता नहीं है। जब कि वे लोग अपनी सीमा से बाहर निकल गए थे तो वीरसिंह को उनका पीछा करने की जरूरत ही क्या थी? परन्तु कर्म के आगे कौन बढ़ सकता है!—होनहार ही ऐसा था। महाराज राजसिंह की आज्ञा तो केवल अपनी अपनी सीमाओं की रक्षा करने की ही है, पर वीर बालक वीरसिंह यवनों को देख कर उत्तेजित होगया और अवसर पाकर उनको निःशेष करने की इच्छा से अपनी हद छोड़ कर इतनी दूर तक चला गया।"

पद्मनाथ ने उत्तर दिया, 'संग्रामसिंह जी! वीरसिंह की उस समय की वीरश्री कुछ और ही थी। जिस प्रकार कोई अच्छा शिकारी बहुत समय तक कुछ न पाकर निराश हो वापिस जाने लगता है और फिर सहसा किसी बड़े जंगली सुअर को देख कर नए उत्साह से उसका पीछा करने में अग्रसर हो जाता है उसी प्रकार वीरसिंहजी भी बहुत दिनों बाद मुगलों को देखकर उनका पीछा करने में लगे हुए थे आज कितने ही दिनों से वे सीमा पर

नियत थे परन्तु मुगलों का नाम निशान तक न देख कर वे मन में बड़े ही क्रुद्ध रहे थे। जब से महाराज राजसिंहजी ने उन्हें यहाँ भेजा तभी से उनकी बलवती इच्छा थी कि वे कुछ न कुछ कर्त्तब दिखाएँ-छापा मारकर अथवा हरा कर मुगलों की दो एक टोलियों को महाराज के सामने ले जाकर उपस्थित करें, पर यह असंभव ही सा मालूम होता था। कितना ही बार मुगलों का पता लगाने के लिए उन्होंने हम को दूर २ तक भेजा, यहाँ तक कि हम लोग थक भी गए परन्तु मुगलों का कहं पता न लगा। परन्तु परसों जब से यह सुना कि मुगल इधर ही की ओर बढ़ रहे हैं वीरसिंह की दोनों भुजाएँ फड़कने लगी और अपने शस्त्रादि से सुसज्जित होकर तुरन्त सैनिकमण्डली को इकट्ठा करने के लिए उन्होंने शंख बजवाया तथा हमें भी अपने साथ ले लिया। बाद में सुना कि गलों का मोर्चा इसी तरफ लगा है और फिर थोड़ी ही देर में शेरखाँ की टुकड़ी से हम लोग भिड़ गए

"मुगलों ने पीठ दिखाई। उस समय वीरसिंह को चाहिए था कि थोड़ा सा पीछा करके उन्हें छोड़ देते। परन्तु वे उनके पीछे अकेले ही लगातार बढ़े चले गए। कह नहीं सकते कि उन्हें अकेले ही बढ़ते देख कर कोई यवन लौट पड़ा या किसी ने रास्ते ही में छिप कर उन पर पीछे से हमला किया क्योंकि जब हम लोगों ने उनके पास जाकर देखा तो वे बुरी तरह जख्मी हो रहे थे और बेसुध पड़े थे। उनको होश में लाने तथा जख्मों को बाँध कर खून का गिरना बन्द करने की हमने बहुतेरी कोशिश की परन्तु कोई भी फल न हुआ। अन्त में बहुत अधिक रक्त निकल

जाने के कारण उन्होंने प्राण त्याग दिए और हम लोग उनके शव को भस्म कर यह कुसमाचार आपको सुनाने आये हैं। एक वार शव को आपके पास लाने का भी विचार किया, परन्तु रास्ता छै सात दिन का होने के कारण लाते-लाते उसमें से दुर्गन्ध आने लगती। साथ ही उसे वहाँ छोड़ आना भी अनुचित था, इसलिए उसका वहीं अग्नि-संस्कार कर दिया कितनी ही वार उनको समझाया कि आप आगे न बढ़ियेगा परन्तु उन्होंने एक न मानी। उनका शौर्य, उनका साहस, सब ही अपूर्व था-पर वह दुराग्रह का फल है।"

पद्मनाथ का यह सब कथन वृद्ध राजपूत चुपचाप सुन रहा था। बीच-बीच में उसकी आखों से आंसुओं की बूंदे टपकती जाती थी। परन्तु उनकी कोई पर्वाह न कर वह अपने मार्ग पर ध्यान पूर्वक चल रहा था। पद्मनाथ ने वीरसिंह की मृत्यु का यह वृत्तान्त उससे पहली वार नहीं कहा था, यह कोई चौथी पांचवीं वार होगा। पर उसके सुनने से वृद्ध को किसी तरह के कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। यदि कोई मनुष्य, जिसके उपर किसी का प्रेम हो, मरजाय तो उसकी मृत्यु का वृत्तान्त बार वार कहने या किसी को कहते सुनने से भी मन को एक प्रकार की सान्त्वना मिलती है। वही स्थिति इस समय संग्रामसिंह की थी।

थोड़ी दूर और चलकर वह गाड़ी और मण्डली एक घनी झाड़ी के पास पहुंची। यहां एक तरफ राख का ढेर दिखाई दिया उसी समय भील ने आगे बढ़कर इधर-उधर देखते हुए सहसा कहा, "बस यही वह जगह·· ······

गाड़ी रुक गई और भीतर से ही किसी ने उसके परदे उठा दिए तदनन्तर बाईस-तेईस वर्ष की एक युवती बाहर की तरफ मुंह निकाल इधर-उधर देखकर उसमें से नीचे उतरी। उसका मुखमण्डल बहुत दुःखपूर्ण दिखाई देता था। उतरते ही उसने फिर एक बार परदा हटाकर अपने हाथ के सहारे, एक किसी दूसरी तरुण स्त्री को नीचे उतारा।

यह दूसरी स्त्री करुणारस की मानों सजीव मूर्ति थी। वह बिलकुल शुभ्र वस्त्र पहने हुए थी। उसके गले में मोतियों की माला तथा हाथ में सिर्फ एक ही कंगन था। इस समय उसके नेत्रों में आंसू नहीं थे एक बार उनका पूर मानों सदा के लिए बह कर अब उनका वहाँ नाम तक नहीं रहा था। अथवा, यह भी हो सकता है कि आंसुओं को बाहर न आने देने के निश्चय से उस सुन्दरी ने उनको अन्दर ही अन्दर दबा रक्खा था। उसने निश्चय किया था कि दूसरों को उसका दुःख न मालूम हो सके और वह निश्चय उसके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रहा था। जिस स्त्री ने उसे गाड़ी से उतारा था वह उसे तुरन्त अपने साथ ले राख के ढेर के पास पहुंची और फूट-फूट कर रोने लगी। वृद्ध राजपूत एक ओर चुपचाप खडा था तथा उसी तरह उसके साथी भील भी एक तरफ खड़े हुए थे। अन्य राजपूत भी विषण्णवदन हो वृद्ध के पास ही जाकर खड़े हो गये। हरेक के चेहरे पर दुःख के चिन्ह स्पष्ट रूप से विद्यमान थे परन्तु अब बाईस-तेईस वर्ष की स्त्री के सिवा किसी के भी मुख से शोक के उद्गार बाहर नहीं निकलते थे। "वीरसिंहजी! वीरसिंहजी!

आप कैसे हमें छोड़ गए ? महाराज- की सेवा करने के लिए आपका जन्म हुआ था यह बात हमें स्वीकार है परन्तु केवल इसी के लिए अपना जीवन संशय में डालने का कोई कारण न था क्या आप अपनी पत्नी से, हमसे, अपने पिता से, इतना उकता गए थे कि आप ऐसा साहस कर बैठे ?" इसी प्रकार करुणा भरे शब्दों में चिल्लाकर वह रो रही थी।

दूसरी युवती की आयु लगभग बीस वर्ष की होगी। उसने एक बार नीचे झुक कर उस राख के ढेर के सामने सिर नवाया और उसमें से थोड़ी राख उठाकर अपने मस्तक पर लगाली। इतने में उसकी आंखों से आंसू बहने लगे और बड़ी कठिनता से वह अपनी सिसकियों को रोक सकी। उसने अपने आंसू पोंछे और फिर बड़ी धीरता से अपनी सखी के पास जा उसे उठाने के लिए उसका हाथ पकड़ा। वह बोली, "देवलदेवी ! माताजी को न लाकर तुम्हे क्या मैं इस तरह विलाप करने के लिए लाई थी या इसलिए कि तुम मुझे शीघ्र आज्ञा दे सको ? पिताजी ! आप अब देर क्यों कर रहे हैं ? इन भीलों को चिता बनाने के लिए ईंधन लाने की आज्ञा क्यों नहीं देते ? आइये मथुरानाथ जी ! आप उपाध्याय हैं मंत्रोच्चारण कर मुझे विदा दीजिए; इसीलिए पिता जी आपको यहां लाये हैं। अब आप लोग कोई दुख न करें मुझमें अपने पति के दर्शन की प्रबल इच्छा हो रही है। जैसे जैसे आप विलम्ब करते हैं वैसे ही वैसे मुझे अधिक वेदना होती है। अब क्यों मुझे दुःख देते हैं ?—चलो उठो, उठो, देवल ! क्यों तुम इतना विलम्ब कर रही हो ?'

इन धीर तथा शान्त व्याकुलता के शब्दों को सुनकर सबको बडा आश्चर्य हुआ क्योंकि जब संग्रामसिंह कमलकुमारी को लेकर घर से निकले थे तो उन्हे आशा थी कि इस स्थान तक आते २ कमलकुमारी अपने पति के साथ जाने के निश्चय को छोड़ देगी। परन्तु जब यह सब दूसरी ही बातें देख पडी तब उन्हें बड़ी ही निराशा हुई। उनका धैर्य टूट गया और वह स्त्रियों के समान विकल होकर रोने लगे।

कमलकुमारी संग्राम सिंह की इकलौती बेटी थी। मेवाड़ के राणा राजसिंह के वंश के वीरसिंह नामक एक पुरुष से उसका विवाह हुआ था। वीरसिंह मुगलों का बडा ही द्वेषी था और राणा राजसिंह उस पर बड़ा अनुग्रह रखते थे। उसकी भी राणा के ऊपर इतनी भक्ति एवं निष्ठा थी कि यदि राजसिंह उसे अपना सिर काटने की भी आज्ञा देते तो वह उसका तुरन्त ही पालन करता। ऐसी स्वामीभक्तिजिस व्यक्ति में हो उस पर यदि उसके स्वामी की कृपा रहे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। वीरसिंह की महत्वाकांक्षा यह थी कि वह मुगलों का सर्वनाश करे और अपनी इस आकांक्षा की तृप्ति के लिये उसने राजसिंह से सरहद के रक्षा करने का भार अपने लिए माँग लिया था औरङ्गजेब राजसिंह को राजपूताने में प्रबल देख कर जी में जलता था और इसलिए उसने कुछ भेदिए लोगों तथा कुछ फौज को मेवाड़ की सीमा पर जगह २ छोड़ रखा और अव-सर पाने पर उनके राज्य में प्रवेश करने की आज्ञा भी उन्हें दे दी थी। उधर राजसिंह को इन लोगों का अपने यहाँ दिखाई दे जाना

भी अप्रिय था। इसलिए उन्होंने अपनी सीमा पर, स्थान स्थान पर, छावनियां बनाकर उन्हें अपने शूरवीर राजपूतों के अधिकार में छोड़ दिया था। अरावली पर्वत के अत्यन्त दुर्गम और भयानक जंगल में वीरसिंह रक्खे गए थे। इस स्थान पर रहते हुए वीरसिंह ने किस प्रकार साहस दिखाया और उसका क्या परिणाम हुआ पन्नानाथ के सम्पादण द्वारा पाठक उससे परिचित होगए होंगे। वीरसिंह जिस समय अपनी छावनी से रवाना हुए थे तो अपनी पत्नी को साथ में नहीं लाए थे। अतएव उनकी मृत्यु का दु:ख समाचार उनकी पत्नी तथा उनके माता पिता को कोई आठ दिन पीछे मालूम हुआ पति मृत्यु की दारुण खबर सुन कर कमल-कुमारी ने सती हो जाने का दृढ़ निश्चय किया। सती होने के लिए पति के शव की जरूरत थी परन्तु उसे उनके साथियों ने जला दिया था और तदनन्तर वे यह दु:ख समाचार सुनाने उसके पिता के पास आए थे। इसलिए जिस स्थान पर पति के शव का दाह किया गया था उस स्थान पर जाकर पति की मूर्ति बना उसके साथया उनकी पादुका लेकर ही सती होजानेका उसने निश्चय किया

अकबर बादशाह ने सती होना बन्द करने को बहुत चेष्ठा की किन्तु उसे इस कार्य में मनोवांछित यश प्राप्त न हो सका। क्षत्रिय रमणियाँ पति की मृत्यु के बाद उसके साथ जाने के लिये सदैव उत्सुक रहा करती थी। पति के मरण के पश्चात् हरेक पतिव्रता स्त्री के लिए, इस जगत में जीवन बिताना पापलोक में रह कर अपनी आत्मा को भी उसी में कैद कर रखने के समान था, और इसी कारण से वे खुशी २ पति के साथ अपना भी दाह कर लेती थी।

कमलकुमारी ऐसे ही निश्चय वाली पतिनिष्ठा स्त्री थी। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने उसी क्षण, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, अपना निश्चय किया और तुरन्त सती हो जाने के लिए तैयार हो गई। परन्तु क्या कोई माता-पिता अपनी इकलौती कन्या को अग्नि में भस्म होने देने के लिए राजी हो सकते हैं? उन्होंने, उनके मित्रों ने, उसकी सखियों ने उसे इस निश्चय से हटाने की बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु उसने अपना हठ न छोड़ा। सबने बार बार हर प्रकार से उसे समझाना चाहा, पुराणों में वर्णित कुंती जैसी सती स्त्रियों की कथाएँ उसे सुनाईं, परन्तु सब निष्फल हुआ। उसका निश्चय दृढ़ रहा। "अगर आप मुझे सती होने की आज्ञा न देंगे तो मैं खाना पीना छोड़कर प्राण-त्याग करूँगी-"यह उसने दृढ़तापूर्वक स्पष्ट रूप से कह दिया और तदनुसार एक दिन भर जल अन्न का ग्रहण नहीं किया। ऐसी दशा देखकर संग्रामसिंह ने लाचार हो उसे अपनी इच्छानुसार करने की अनुमति देदी। तब उसने हठ किया कि मेरे साथ किसी को भी नहीं जाना होगा और खासकर माताजी तो हरगिज़ नहीं जाएँगी, क्योंकि उनके मन में अधिक मोह उत्पन्न होने से उन्हें कष्ट होगा। पहले रिवाज था कि जब कोई स्त्री सती होने जाती थी तो बहुत से लोग उसके साथ जाया करते थे और उस समय तरह तरह के बाजे भी बजते थे। परन्तु कमलकुमारी ने इसके लिए भी मना किया। अंत में, सब बातें उसकी इच्छा के अनुसार कर केवल उसकी सखी देवल देवी, उपाध्याय मथुरानाथ, पद्मनाथ और दो शूर राजपूतों तथा मार्ग बताने के लिए चार मालों को साथ ले, आरम्भ में वर्णन की

गई गाड़ी में उसे बिठा कर संग्रामसिंह की चिता के पास आए। वहाँ पहुँचने के बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

देवलदेवी ने, इस अभिप्राय से कि एक बार और अपना अन्तिम प्रयत्न कर कमलकुमारी को उसके हठ से हटाने की चेष्टा की जाय जैसे तैसे अपने शोक को दबाया और उससे कहा, "कमल ! तू पागल तो नहीं हो गई है जो इतनी थोड़ी उम्र में ही सती हो जाने की जिद करती है ? भगवान् एकलिंग जी की सेवा में शेष आयु बिताने से क्या तुम्हें कम पुण्य मिलेगा ? पिताजी और माताजी को तेरे सती होजाने पर कितना दुःख होगा इसका क्या तुमको बिलकुल खयाल नहीं ? तू उनकी एकमात्र कन्या है—उनके जीवन का आधार है। यदि तू इस तरह प्राणत्याग करेगी तो उनकी क्या दशा होगी ? अरी मूढ़ ! क्या उनके दुःख की ओर तू तनिक भी ध्यान न देगी ?"

यह सुन कमलकुमारी हँस कर कहने लगी, "देवल ! तेरे शब्दों पर मुझे बड़ी हँसी आती है। क्या तेरे कहने का मतलब यही है कि यदि मैं पति के साथ प्रस्थान कर जाऊँगी तो पिताजी माताजी को बड़ा दुःख होगा और अमंगलपूर्ण वैधव्य से कलंकित मुझे प्रतिदिन देखते रह कर वे संतुष्ट होंगे ? देवल, तेरे ही तर्क से यह स्पष्ट हो जाता है कि तू पागल है या मैं। चल, अब ऐसी मूर्खता की बात मत कहना। मेरी सब तयारी करा दे और इन भीलों से ईंधन लाने को कह पिताजी को कष्ट देने की जरूरत नहीं। यह दोनों राजपूत और पद्माकर जी चिता रच देंगे।" इसके बाद

उसने मथुरानाथ की तरफ देखकर कहा "मथुरानाथजी। आप
प्रतिमा नहीं बनाते ? तब क्या मुझे अपने साथ लाई पादुकाओं
को ही निकालना होगा ? आप जैसा आदेश देंगे वैसा करूँगी।
मगर यह क्या ? आपके आँसू बहने लगे ! इस देवलदेवी ने
आप सबों को रुलाया है। क्यों मैं इसे अपने साथ लाई ? मैं
अकेली ही आती तो अच्छा था।"

"साध्वी कमलकुमारी !" गद्‌गद् कण्ठ से मथुरानाथजी ने
कहा, "तेरे सामने हम लोग केवल तुच्छ मनुष्य ही हैं। तेरी
धीरता देख कर हमें विस्मय होता है। तेरा निश्चय ही तेरा मंत्र
है। हमारे वैदिक मंत्रों से तुझे क्या अधिक फल प्राप्ति होगी ?
संग्रामसिंहजी ! आप के वश में यह मानवी कमलकुमारी नहीं
किन्तु कोई महादेवी है। इस जगत की लीला देखने ही यह यहाँ
आई थी, यह समझ कर अपने को बधाई दो और शोक को दूर
कर इसके लिए तयारी करो। जाओ भीलों ईंधन लाओ और पुण्य
के भागी बनो। देवल ! तुम भी अब शोक मत करो। कमलकुमारी
सामान्य स्त्रियों के समान नहीं है। धन्य हो साध्वी। तेरा पुन्य
ही महाराज राजसिंह का पुण्य है। जब तक तेरे समान स्त्रियाँ
इस मेवाड़ देश में हैं तब तक किसी की भी हिम्मत नहीं कि उसकी
ओर टेढ़ी नजर से देख सके। चलो अब, हम सब शोक को त्याग
कर अपने अपने काम में लगें। हमारे बड़े भाग्य हैं कि हम इस
समय ऐसे अवसर पर यहाँ आ पाए।"

यह कह कर मथुरानाथ बैलगाड़ी के पास गए और तुरन्त साथ
में लाये हुए सामान को छकड़े से निकालने लगे। देवलदेवी अब

भी मन उदास किए हुए शोक कर रही थी। कमलकुमारी ने जोर के साथ उससे शान्त होने को कहा और उसे हाथ पकड़ कर उठाया। देवल भी अब कुछ प्रकृतिस्थ हो गई थी। जब उसने देखा कि अब कमलकुमारी सती हुए बिना नहीं रहेगी तब उसने बल पूर्वक अपने शोक को रोका और राजकुमारी को सहायता देने के लिए तयार हुई। सती होने का जरूरी सामान कमलकुमारी अपने साथ ले आई थी, यह सब देख कर मथुरानाथ जी को बड़ा विस्मय हुआ। परन्तु सती होने का जिसने निश्चय किया हो उसे क्या इतनी बात भी न सूझती-यह मन मे सोच उन्होंने देवलदेवी के हाथ में रक्तवस्त्र देकर उसे कमलकुमारी को पहनाने के लिए कहा। तदनन्तर उसके सिर गूँथने तथा माँग में कुँकुम भरने और फूलों से उसका केशपास सुशोभित करने को कह कर उसने खुद चिता जिस विशेष रीति से बनाई जाती है ठीक उसी प्रकार कमलकुमारी की चिता बनाई गई। भीलों ने उसके लिए यथाशक्ति चंदन ही की लकड़ी इकट्ठी की थी। जब चिता बनकर तयार हो गई तो मथुरानाथ उसे अपने पिता तथा देवलदेवी से मिलने और माता जी का स्मरण करने एवं पति की पादुका हाथ में लेने के लिए कहा।

कमलकुमारी ने धीरता से सब कुछ किया। उधर संग्रामसिंह धैर्य विचलित हो एक ओर बैठे थे। शोक से वह बिल्कुल आकुल थे। जब चिता तयार हो गई तो उसका अग्नि संस्कार किया गया। जैसे जैसे चिता जलने लगी वैसे वसे उनका अन्तःकरण फटने लगा। प्रथम तो कन्या का विधवा होना तथा फिर उसे

अपने ही सामने सती होने देखना-इससे बढ़ कर शोकप्रद बात एक पिता के लिए और कोई नहीं हो सकती। यह विचार मन में उदित होने पर वह शून्य दृष्टि से इधर उधर देखने लगे। इतने में कमलकुमारी उनके सामने आकर खड़ी हुई और प्रणाम करके बोली, "पिताजी ! मैं अब आपसे आज्ञा मांगती हूँ, जिससे जिसके हाथ में आपने मुझे सौंपा था उसी के सहवास में इस लोक की भांति मैं पर लोक में भी रह सकूं। फिर आप क्यों दुख करते हैं। उठिए, और मुझे गोद में लीजिए। जिस प्रकार विवाह के दिन मेरे वदन पर हाथ फेर कर आपने कहा था— कमल ! जाओ, अपनी ससुराल जाकर सुख से रहो, उसी प्रकार अब भी कह कर मुझे आज्ञा दीजिये। मन में जरा सा भी दुःख न कीजिए। माताजी से कहना कि मैंने अपने पति की पादुका लेकर आनन्द से उनके पास प्रस्थान किया और एक बार भी दुःख का निश्वास नहीं छोड़ा। और भी कहना कि मेरे स्थान पर अब देवल देवी है—उससे वह वैसा ही प्यार करें जैसा कि मुझसे करती थीं। करेंगे न पिताजी ? मगर यह क्या, आपकी आंखें क्यों भर आईं ?"

अपने पिता से इतना कह वह देवलदेवी के पास गई और बोली, "देवल ! मेरे स्थान पर अब तुम्हीं हो। पिताजी और माताजी को तसल्ली देना। इस तरह बर्ताव करना कि उन्हें मेरी याद न आए। इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे तुमसे नहीं कहना है।" तब वह मथुरानाथ से बोली, "मथुरानाथजी ! आप पुरोहित हैं, इसलिए अन्त आपको प्रणाम करती हूं। माताजी का स्मरण

कर उन्हें प्रणाम करती हूँ। पिताजी! आपको प्रणाम, मुझे आनन्द से आज्ञा दीजिए।"

इतना कहकर उसने एक वार सब की ओर देखा और फिर उपाध्याय से मन्त्रादि कहने तथा विधि बतलाने की प्रार्थना की मथुरानाथ का कंठ इतना गद्गद् हो रहा था कि उनके मुख से शब्द तक बाहर न निकलते थे और यदि जैसे तैसे निकलते भी थे तो रोती हुई सी आवाज में। कमलकुमारी उनकी ओर देख कर हंसी और बोली "उपाध्याय जी! आपको क्या हो गया है? अगर आप ही शोक करेंगे तो माता जी को कौन सान्त्वना देगा? और अगर आप मंत्र ठीक प्रकार से नहीं कहेंगे तो विधी शास्त्र के अनुसार नहीं हो सकेगी और न मुझे ही समाधान होगा। बताइए तो अब मैं क्या करूं?"

मथुरानाथ ने उत्तर दिया, 'कमलकुमारी! तुम परम साध्वी हो; हमारे मंत्रों की तुम्हें क्या जरूरत है? तुम्हें हम आशीर्वाद नहीं दे सकते। इसके बदले तुमसे आशीर्वाद की याचना करनी होगी। तुम हमें प्रणाम नहीं कर सकती हो वरन् हमें ही तुमको प्रणाम करना होगा। पर तुम्हारा आग्रह ही है तो आओ, यहाँ खड़ी होओ। मंत्र का उच्चारण करते ही ...... पर, हैं! यह क्या आपत्ति है! घोड़ों पर सवार ये सिपाही इधर क्यों आ रहे हैं?" परन्तु मथुरानाथ अपने वाक्य को पूरी तौर से कह भी न सके। ज्योंही उन्होंने इतना कहा और कमलकुमारी ने, जो कि सती होने के लिए चिता में कूदने को तैयार खड़ी थी, ऊपर को देखा, त्योंही लगभग पचास सिपाही वहाँ आ खड़े हुए और 'यह क्या! यह क्या।' कह कर धूम मचाने लगे।

यह विलक्षण स्थिति देखकर कमलकुमारी अत्यन्त क्षुब्ध हुई। सती होने के बीच में ही एक विघ्न उपस्थित होगया। और तो क्या, जिनकी छाया तक ऐसी अवस्था में अशुभ है वे ही बेधड़क चिता के पास आ पहुँचे। जो कुछ हुआ सब ही अशुभ था। और आगे कितने विघ्न आएँगे इसे कौन कह सकता है। यह शंका मन में उत्पन्न होते ही उसका कलेजा मानों फटने लगा। तथापि धीरता से वह चिता के पास जा मथुरानाथ को पुकारने लगी। इतने में नई मंडली में से एक, अपना घोड़ा आगे बढ़ा उसके सन्मुख आया और एकदम उसे पहचान कर बोल उठा, "कौन ? कमल कुमारी ! क्या तू सती होरही है ? और तुझे सती होने की आज्ञा किसने दी है ? इसी ने तेरे पिता संग्रामसिंह ने ! क्यों ?"

अपने नामों से उसे परिचित देखकर पिता पुत्री, दोनों, बड़े विस्मित हुए और उसकी ओर देखने लगे, परन्तु वे उसे पहचान न सके। तथापि कमलकुमारी ने एकदम उनके सामने जाकर कहा "भाईजी ! आप कोई भी व्यक्ति हों, मेरी आप से यही विनय है कि मेरे निश्चय की पूर्ति में आप बाधा न डालें। बड़ी कठिनता से इन सब की इच्छा के विरुद्ध इनकी सम्मति पा मैं सती धर्मानुसार आचरण करने में समर्थ हो सकी हूँ। इस समय मैं मानों स्वर्ग के द्वार पर खड़ी हूँ—इस आनन्द से मैं डूबी जारही हूँ—फिर आप क्यों इसमें विघ्न डालते हैं ? अगर आप राजपूत हैं तो मुझे अपनी धर्म की शरण लेकर सती-धर्म के अनुसार चलने दीजिए और यदि राजपूत नहीं हैं तो भी कृपा कर विघ्न न डालिए।"

कमलकुमारी ने इतनी धीरता से इन शब्दों को कहा कि उन्हें

सुनकर उस मनुष्य को, जो इस समय चिता के और उसके बीच में खड़ा था, बड़ा आश्चर्य हुआ और वह निस्तब्ध हो उसकी ओर देखने लगा। कौन कह सकता है कि क्षणमात्र के लिये उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ हो कि इसके धर्माचरण के बीच में हम लोग विघ्न क्यों डालें। परन्तु यदि ऐसा विचार उसके मनमें आया भी होगा तो वह केवल क्षण भर ही के लिए, क्योंकि तुरन्त ही अपने भावों को अपने मनमें ही छिपाकर उसने कमलकुमारी से कहा, "कमलकुमारी! मैं कौन हूँ, इसका उत्तर देने का यह समय नहीं है। परन्तु इस वक्त मैं तुम्हें सती न होने दूंगा और अपने साथ ले जाऊँगा। अगर आप सब लोग समझदार हैं तो शान्ति-पूर्वक मेरा कहना मानलें, अगर नहीं तो ....।"

परन्तु संग्रामसिंह तत्काल आगे बढ़ा और उसकी तरफ झपट कर चिल्ला कर बोला, 'क्या तू यह नहीं जानता है कि किससे तुझे झगड़ना होगा? बाज के घोंसले से अगर उसके बच्चे को छीनना चाहो तो बाज से लड़ना पड़ता है। हरामजादे! सतीधर्म में बाधा डालने वाले अधम तुझको आत्महत्याकी शिक्षा देनाही उचित है।"

इतना कहते-कहते क्रोधातिरेक से वृद्ध का शरीर थरथर काँपने लगा। उसकी आवाज भी भर्राने लगी। तलवार निकालकर उसने विघ्न डालने वाले के शरीर पर एक वार किया। दोनों ओर से लड़ाई शुरू होगई। परन्तु सतीधर्म में विघ्न डालने वाला यह व्यक्ति कौन था और उसने आगे क्या किया तथा उस लड़ाई का क्या फल हुआ-यह सब आगामी परिच्छेद में कहा जायगा। इस समय इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि उसका नाम उदयभानु था

किसी सरदारकुल की एक नवयौवना कन्या से अपना विवाह करने की इच्छा की और उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न भी किया। परन्तु, 'दासी का पुत्र'—यह कलंक उसका जीवन भर न धुल सका और इस कारण अपने दूसरे प्रयत्न में भी उसे विफल-मनोरथ ही होना पड़ा।

उदयभानु की जिसके साथ विवाह करने की बड़ी आकांक्षा थी वह संग्रामसिंह नाम के एक बड़े सरदार की इकलौती कन्या कमलकुमारी के अतिरिक्त और कोई नहीं थी। संग्रामसिंह के पास जाकर जब उसने अपनी हार्दिक इच्छा उनसे प्रकट की तो वे बड़े बिगड़े और बोले, "हमारी कन्या हँस के कुल में ही जाएगी। कौआ चूने में अपने पंख डुबोकर उन्हें सुफेद करने की कितनीही कोशीश करे तो भी वह हंसी को किसी तरह नहीं पा सकता।"

यह उत्तर सुनते ही उदयभानु मनमें जल उठा और जब कुछ समय बाद उसने यह सुना कि कमलकुमारी का विवाह वीरसिंह से होगया है तब तो वह आग-बबूला होगया। वीरसिंह ने शुद्ध राजवंश में जन्म पाया था। वह एक प्रकारसे उदयभानु का चचेरा भाई था, क्योंकि उदयभानु का पिता और वीरसिंह का पिता, दोनों सगे भाई थे। परन्तु उदयभानु अपने पिता की दासी का पुत्र था, इसलिए कोई भी उसे 'भाई' कहने पर राज़ी नहीं था। वीरसिंह और उदयभानु, दोनों की उम्र भी बराबर ही थी और दोनों ने एक ही स्थान पर शिक्षा पाई थी। परन्तु बाद में राज-दर्बार में [illegible] के कारण शीघ्र

सिंह का स्नेह-भाजन बनकर अधिकाधिक सम्मान भी पाने लगा। उधर उदयभानु यह देखकर मन-ही-मन झुलसने लगा।

इस प्रकार, किसी तरह भी यश प्राप्त करना असम्भव देख उसने कपट-नाटक रचना चाहा और महाराज राजसिंह के शत्रुओं का साथ देने का विचार किया। औरङ्गजेब हृदय से चाहता था कि राजसिंह को तथा उनके वंश को पद्दलित करें, परन्तु राजसिंह ऐसे-वैसे पुरुष न थे। जिस तरह कि राजसिंह को अपने आधीन करने की औरङ्गजेब की उत्कट इच्छा थी उसी तरह राजसिंह की भी यह उत्कट इच्छा थी कि अपने सब जाति भाइयों को मिलाकर औरङ्गजेब को सताएँ या मुग़ल साम्राज्य का हिन्दुस्तान से मूलोच्छेद करदें।

औरङ्गजेब के उपाय कभी सरल न होते। कपट-नीति का अवलंबन कर वह अपने हेतु की सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करता था उसी के अनुसार इस समय भी उसने अपना उपक्रम आरंभ किया राजसिंह के राज्य के भीतर चालाकी और फ़ितूर से फूट डालने के लिये अपने प्रयत्न शुरू कर दिए। फल यह हुआ कि उदयभानु के रूप में उसे एक साधन मिल गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि औरङ्गजेब के निकट उसका महत्व खूब बढ़ा। इस महत्ववृद्धि के कारण अथवा किसी दूसरे कारण से, ऊदयभानु मदोन्मत्त हो गया। उसके इन आचरणों को देखकर राजसिंह को शङ्का हुई और उन्होंने उसे अपने राज्य से निकाल दिया। वास्तव में, उचित तो यही था कि उसका सिर कटवा लिया जाता; परन्तु भाग्य के जोर से [illegible]

इस कार्य के लिए उदयभानु ही योग्य व्यक्ति मालूम हुआ। अतएव तुरन्त उसे बुलवाकर बादशाह ने उससे कहना आरम्भ किया, "उदयभानु ! अपने साथ एक हजार राजपूत लेकर तुम फौरन दक्षिण की तरफ जाओ। साथ में शाहजादा तथा जसवंत सिंह के लिए भी तीन हजार आदमी ले जाना। यह चिट्ठी उन्हें देने के लिए तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ इसे उन्हें देकर तुम 'कोंडाणे' किले पर (यही किला बाद में 'सिंहगढ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ) जाकर रहो। मैं चाहता हूँ उस किले पर तुम जैसे बहादुर सरदार को ही रक्खा जाय। उस दगाबाज शिवाजी से सुलह करते वक्त मैंने उसे कोंडाणे किला नहीं दिया था। इसका कारण यही था कि जब तक वह किला अपने हाथ में है तब तक वह प्रान्त उसके कब्जे में होने पर भी मानों अपने ही कब्जे में है। जिस वक्त मेरा खत वहां पहुंच जायगा और मेरा मंशा उस काफिर को मालूम हो जायगा तो वह पहले कोंडाणे पर ही अधिकार करने का प्रयत्न करेगा। इसीलिए तुम्हारे समान मनुष्य को मैं वहां भेज रहा हूँ।

इसके अलावा, वहां जाते ही तुम्हें एक दूसरा काम भी करना पड़ेगा। तुम्हें पता लगाना होगा कि जसवन्तसिंह बेईमान बनकर उस काफिर से तो नहीं मिल गया है। अगर इसके बारे में सब [illegible] तुम बता सकोगे और जसवन्त सिंह की नमकहरामी साबित कर सकोगे तो अच्छी तरह से ख्याल रखो कि मैं आलमगीर हूँ—तुम्हें निहाल कर दूंगा, जसवन्त सिंह का अधिकार तथा

उसका राज्य तक तुम्हें मिल जायगा, जिससे फिर ये राजपूत तुम्हारे पैरों में आकर लौटेंगे।

अभ्युदय प्राप्त करने का ऐसा उत्तम अवसर पाकर उदय-भानु को अत्यन्त आनन्द हुआ-यह कहने को आवश्यकता नहीं। उसने सोचा, "यदि जसवन्त सिंह औरङ्गजेब से दगाबाजी करते हों तो ठीक ही है, उनकी जरासी बदनामी की बात मालूम होते ही उनकी शिकायत की जा सकती है। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो बुद्धि के बल से अनेक प्रकार के कपट-प्रबन्ध रच सकते हैं। हर तरह की चालबाजी से काम ले उनके विरुद्ध मनमाने प्रमाण पेश कर सकते हैं तथा किसी न किसी तरह उनको जाल में फँसा कर बादशाह के सामने उन्हें पूरा बेईमान साबित कर सकते हैं और जब ऐसा हो जायगा तो फिर जोधपुर का राज्य अपने हाथ में आने पर दक्षिण की सूबेदारी भी मिल ही जायगी।" इस प्रकार मन में शेखचिल्लियों के से मंसूबे बाँध कर, भविष्य में किस प्रकार जसवंतसिंह को जाल में फँसाया जायगा—इस पर वह विचार करने लगा। बादशाह ने एक हजार चुनीदे सैनिक अपने साथ ले जाने की उसे आज्ञा दी थी तथा साथ ही जसवन्तसिंह की सहायता के लिए भी दो तीन हजार और सिपाही ले जाने को कहा था। इसके अतिरिक्त एक रिवाज भी था कि यदि कहीं जाने वाली मुग़ल सेना एक हजार होती थी तो उसके साथ ढोल बाजे वालों की संख्या लगभग दो हजार हो जाती थी। उदयभानु की सेना इस प्रथा का अपवाद नहीं थी। उसने अपने साथ ले जाने के लिए एक हजार चुनीदा राजपूत लिए थे और जसवन्तसिंह के लिये दो

जाने को बादशाह ने तीन हजार दिए थे। कुल सेना चार हजार थी और उससे लगभग दोगुने दूसरे लोग थे। इतनी बड़ी फ़ौज और लवाजमा साथ लेकर उदयभानु मन में अपने को जोधपुर का भावी महाराज तथा दक्षिण का सूबेदार समझता हुआ दिल्ली से निकला।

जिस समय नीचे पद का कोई मनुष्य थोड़ा सा अधिकार पा जाता है तो उसे यह इच्छा होती है कि जिन्होंने पहले हमें हीन अवस्था में देखा है उनके सामने इस नए अधिकार का प्रदर्शन करें, उनके नेत्रों को चौंधिया दें और उनका सिर नीचे झुकावें। दक्षिण में जाने को उदयभानु के लिए सीधा रास्ता दूसरा था। परन्तु इस भारी फ़ौज को साथ लेकर उसकी इच्छा उदयपुर की सीमा से हो कर जाने की हुई जिससे कि लोग उसके इस बड़े अधिकार-पद को देखकर उसका सम्मान करें। उस फ़ौज का पूरा अधिकार होने के कारण उसे अपने अभिलषित मार्ग से जाने में किसी प्रकार की रुकावट न थी। अतएव सेना को वैसा ही हुक्म देकर उसने अरावली के इस मार्ग का आश्रय लिया। आनन्द सुख के साथ सेनाधिपति महाराज इस तरह चले जा रहे थे मानों किसी युद्ध के लिए न जाकर वह किसी सुन्दरी से विवाह करने जा रहे हों।

उदयपुर के राजा राजसिंह बड़े ही निस्पृह, बेधड़क और धर्मात्मा मनुष्य थे। इस कारण औरंगजेब उनसे बड़ा दुर्भाव रखता था। अतएव, किस मार्ग से प्रबल शत्रु आ जाए, इसका कोई निश्चय न होने पर वह सभी मार्गों में बड़ी सावधानी से रक्षा करते थे। कई स्थान ऐसे थे जिनमें होकर औरंगजेब का उनके प्रदेश में प्रवेश

करना असंभव नहीं था। ऐसे स्थानों की रक्षा के लिए राजसिंह ने अपने विश्वासपात्र मनुष्यों को, जो स्वधर्म के लिए प्राण तक देने को तयार थे, नियुक्त किया था।

कमलकुमारी का पति वीरसिंह का भतीजा था। वह शुद्ध राजपूत मुग़लों का कट्टर दुश्मन और बड़ा ही दृढ़ निश्चयी था। उसे राजसिंह ने जानबूझ कर एक ऐसे ही संशयस्थान पर रक्खा था। राज्य की सीमा के इस प्रकार के भिन्न २ स्थानों पर वीरसिंह जैसे पुरुष को नियुक्त करने में राजसिंह का केवल यही अभिप्राय था कि यदि औरंगजेब की सेना सहसा किसी तरफ से आ जावे तो ये लोग उससे लड़ पड़ें और खबर पहुंचने तक, जब तक दूसरी सेना उसकी सहायता को न आ जावे, या जब तक मुसलमानों से लड़ने की भीतरी तयारियाँ न हो जाएँ, तब तक ये लोग उससे लड़ते रहें। वास्तव में, इस मार्ग से उदयभानु को सेना ले जाने की जरूरत न थी और न उसे किसी से लड़ने की ही आवश्यकता थी परन्तु ऐसा करने के अतिरिक्त एक निकम्मे आदमी के लिए अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का और सहज मार्ग ही क्या हो सकता था? जिस राज्य में से राजसिंह ने उसे निकाल दिया था उसी राज्य में होकर एक भारी फ़ौज लेकर जाने में उसने अपनी बड़ी प्रतिष्ठा समझी। साथ ही उसकी यह भी इच्छा थी कि यदि मौका मिले तो थोड़ी बहुत लड़ाई करके उनके कुछ प्रदेश पर कब्जा कर लिया जाए और उनके कुछ सैनिक कैद कर बादशाह के पास भेज दिए जाएँ। अथवा यदि यह कुछ भी न हो सके तो भी राजपूतों को यह तो दिखाया और बतलाया ही जाए कि बादशाह की सेवा करने से

कितने बड़े वैभव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सकड़ों विचार कर उसने दक्षिण की ओर उसी मार्ग से जाना स्थिर किया। रास्ते में स्थान २ पर ठहरता हुआ वह मौजें भी करता जाता था। वह समझता था कि दैव मेरे ऊपर बड़ा ही अनुकूल है-कुछ थोड़ा ही पराक्रम कर दिखाने से भी बड़ा लाभ हो सकता है। बस, इसी धुन में मार्ग तय करता हुआ वह मेवाड़ की सीमा से लगे हुए किसी वन में पहुँचा और वहाँ सुन्दर वृक्षराशि को देखकर अपनी तमाम सेना के साथ वहाँ ठहर गया। फिर कुछ समय के बाद शिकार खेलने के लिए उसने जंगल के भीतर प्रवेश किया। उस समय उसके साथ करीब पचास चुनीदा सिपाही थे। वे उस वन में किसी वन्य वराह के पीछे दौड़ते हुए पहले परिच्छेद में वर्णित उस स्थान पर आ पहुंचे जहाँ कमलकुमारी सती होने की तैयारी कर रही थी उदयभानु ने पहुँच कर सती के इस कार्य में विघ्न डाला।

जिस समय कमलकुमारी अपने पति का चिन्तन कर उसकी पादुका लेकर चिता-प्रवेश करने ही वाली थी, उसी समय उदय-भानु ने अपने लोगों के साथ जाकर उसे घेर लिया।

यह लोग कौन थे, एकाएक आकर इन्होंने हम लोगों को क्यों घेर लिया-आदि बातें पहले-पहल संग्रामसिंह तथा अन्य लोगों की समझ में न आई। यह नितान्त असंभव था कि एक राजपूत, या कोई भी हिन्दू, एक स्त्री के सती होने के समय आकर बाधा उपस्थित करे। अतएव उन लोगों का पहला अनुमान यही हुआ कि विघ्न डालने वाले मुसलमान होंगे, परन्तु थोड़ी ही देर में उनका यह विचार दूर हो गया। हमला करने वालों

का मुखिया यद्यपि शुद्ध फ़ारसी में हुक्म दे रहा था तो भी उसकी बोली से यह साफ़ ज़ाहिर होता था कि यह मुसलमान की संतान नहीं है। और, जैसा कि गत परिच्छेद में कहा जा चुका है, कमलकुमारी का जब उस मुखिया से संभाषण हुआ तब सब संदेह दूर हो गया। परन्तु वह समय या प्रसंग यह देखने अथवा अनुमान करने का नहीं था कि यह बाधा डालने वाले कौन अथवा किस जाति के लोग हैं। उस समय केवल इसी बात की आवश्यकता थी कि इन लोगों को ठोक कर ठोक किया जाए और संकट निवारण कर कन्या के पतिसहगमन कार्य को यथा विधि पूरा किया जाए। यह सोच कर संग्रामसिंह स्वयं तलवार ले उदयभानु के ऊपर झपटे और उन्होंने अपने मनुष्यों को इन नए शत्रुओं से लड़ने के लिए उत्तेजित किया। कमलकुमारी जैसी साध्वी स्त्री धर्मानुसार पति के साथ परलोकयात्रा कर रही हो और दुष्ट आकर उसके कार्य में बाधा डाले-इससे बढ़ कर राजपूत के लिए चिढ़ने का और कौन सा कारण हो सकता है? यद्यपि वे केवल आठ ही मनुष्य थे तथापि अत्यन्त क्रोध के कारण अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उन्होंने उन पचास आदमियों को हैरान कर दिया। परन्तु दुश्मन के जहाँ छ: आदमी थे वहाँ इनका एक ही था; और उनमें भी कमलकुमारी और देवलदेव—दो स्त्रियाँ! कहाँ तक लड़ते? अन्त में कमलकुमारी के पिता संग्रामसिंह चोट खा कर कैद हो गए। शेष सब मृत्यु के वंश हुए।

उदयभानु का मुख आनन्द से मध्याह्न-भानु की भाँति दीप्तिमान

हो गया मानों उसके हाथ में स्वर्ग ही आ गया हो। मन में कहने लगा–दक्षिण यात्रा के कार्य में जरूर कुछ न कुछ दवी योजना है। इस समय यदि मिट्टी भी हाथ में लीजिए तो सोना हो जाए। जिस समय वह दक्षिण के लिए रवाना हुआ था तो स्वप्न में भी उसे ख़याल नहीं था कि कमलकुमारी हाथ आजाएगी। यही नहीं, यदि किसी भविष्यवक्ता ने भी उससे यह कहा होता तो वह उस पर हरगिज़ विश्वास न करता। परन्तु जब इस प्रकार आकस्मिक रूप से उसने अपने हाथ में स्वर्ग आया हुआ देखा तो आनन्द से नाच कर वह घायल संग्रामसिंह के पास जाकर इस प्रकार बोला-

"कहिए, मामाजी! आपका यही निश्चय न था कि हंसी का हंस से ही मेल होगा, कौए से नहीं। पर अब क्या कहिएगा? जिस हंस को हंसी दी थी वह तो मानसरोवर को चल दिया और अब आपकी तथा उसकी यह हंसी कौए के हाथ लगी। यत्न तो कर रही थी कि हंस के पीछे ही चली जाऊँ, परन्तु उसके नसीब में तो कौए से ही सहवास लिखा है। अब कैसे होगा? कौए के हाथ से छुटकारा पाने के लिए कोई उपाय सोचिए। मामाजी! अब तो आप इस कौए के मामा बन ही गए। क्यों! बोलिए, मुँह क्यों बन्द है?"

संग्रामसिंह के बड़ी गहरी चोट लगी थी और कमलकुमारी तथा देवलदेवी दोनों उनके पास बैठ कर वस्त्रों को फाड़-फाड़ कर उनके जख्म बाँध रही थीं। इस चांडाल की बातें सुनकर उनका हृदय विदीर्ण होगया, परन्तु उपाय ही क्या था। दुष्ट व्यक्ति से

बातें करना मानों उसके हाथ में अपने अपमान का साधन दे देना है। यही विचार कर, कमलकुमारी चुपचाप अपने पिता के जख्म बाँधती रही और रक्त बहने से शक्तिहीन हो जाने के कारण संग्राम-सिंह नेत्र बन्द किए हुए शांत पड़े रहे। देवलदेवी वचन के इस आघात को सहन न कर सकी लेकिन कमलकुमारी ने उसे बोलने से रोक दिया।

जब कोई दुष्ट मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को ताने या गाली देता है तो उसकी एक बड़ी इच्छा रहती है कि उसका प्रतिपक्षी भी उसी प्रकार बात करे जिससे कि दुष्ट मनुष्य गाली देने और दुर्वचन कहने का मौका मिल सके। परन्तु जब उसका प्रतिपक्षी चुप रह जाता है और मर्म को भेदने वाले शब्दों को शान्तता से सुन लेता है तो वह आग-बबूला हो जाता है और दस गुना द्वेष करने लगता है। उदयभानु की अवस्था भी ठीक ऐसी ही थी। संग्रामसिंह, उनकी कन्या कमलकुमारी और देवलदेवी को कोई प्रत्युत्तर देते न देख वह और अधिक चिढ़ गया और संग्रामसिंह तथा कमलकुमारी की ओर देख कर बोला—

"संग्रामसिंह! अगर तुम यह समझते हो कि चुप बैठने से मामला सँभल जाएगा तो तुम्हारी भूल है। राजसिंह का तुम्हें बड़ा अभिमान है। तुम्हें कैद कर अगर बादशाह के सामने ले जाकर खड़ा करदूं तो बादशाह खुशी से तुम्हें जेल में डालकर यह हंसी मेरे अधीन कर देंगे। फिर, कौआ ही क्यों न सही. यह हंसी तो उसकी बन कर रहेगी ही। और इसके अतिरिक्त वह कर भी क्या

सकती है ? तुम्हारे मनमें उसे मुझे न देने का इरादा था परन्तु परमेश्वर के मनमें तो वह मुझे ही देने के लिए थी। हाँ बीच में पड़ कर तुमने उसकी इच्छा में विलम्ब कर दिया। खैर, अब चलो, मैं तुम्हें और अपनी इस भावी प्यारी को बादशाह के सामने पेश करके उनसे सब हकीकत कहूँ और उनके द्वारा इसे अपनी पत्नी बनाऊँ।"

संग्रामसिंह से अब सहन न हो सका। जख्म से खून टपक रहा था परन्तु दुष्ट की बातों से उन्हें तश आ गया और एकाएक उठ कर उन्होंने उदयभानु से कहा "उदयभानु ! धिक्कार है तुझ को जो अपने को राजपूत, क्षत्रिय वीर, कहला कर सती के पवित्र धर्म में बाधा डाल रहा है। एक स्त्री पति की मृत्यु के बाद उसके साथ परलोक की यात्रा करना चाहती है और तू उसके मार्ग में आकर उसे उस दुष्ट, अधम, पितृघातक, भ्रातृघातक, चांडाल के सामने ले जाना चाहता है। यही तेरा क्षत्रियपन है ? यही तेरा राजपूत-कर्म है ? यही तेरा हिन्दू धर्म का अभिमान है ? अधिक अच्छा है कि इसकी अपेक्षा तू..........."

संग्रामसिंह का यह भाषण सुन उदयभानु ने एक औपरोधिक विकट हास्य किया और कहा, "आज तो आपकी दृष्टि में मैं सच्चा राजपूत, असली क्षत्रिय दिखाई देता हूँ। मगर मैं कौन हूँ यह आप भूल गए हैं। खैर, मैं आपको याद दिलाता हूँ। मैं तो वही काक हूँ कि जिसके पंख चूने में डुबो डुबो कर सुफेद किए गए हैं। क्षत्रिय थोड़े ही हूँ। जिस समय मैं आपसे कमलकुमारी

के विषय में प्रार्थना करने गया था उस समय आपने कैसे कटु उत्तर दिए थे। मैं मानता हूँ कि मेरी माता दासी थी, पर यह मेरा दोष तो नहीं है। फिर भी, इसी दोष के कारण मैं काक बना, पर अब स्थिति एकदम से बदल गई है। पहले जिस हंसी को आप मुझे देने से इन्कार करते थे, आपके साथ-साथ उसके अब मेरे हाथ में आजाने पर मैं क्षत्रिय, राजपूत सब कुछ बन गया। मामाजी! असल बात यह है, जरा सुनिए—मैं अब राजपूत नहीं हूँ—मैं मुसलमान हूँ; और इस कमलकुमारी के साथ बादशाह के सामने निकाह कर इसे मैं अपने साथ दक्षिण में कोडाणे किले पर ले जाऊँगा। समझ गए?"

इतना कह कर पुनः उसने एक मर्मभेदक विकट हास्य किया।

अभ्यास

१—इस परिच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखो जो दो पृष्ठों से अधिक न हो।

२—पिछले परिच्छेद में उदयभानु के भावी चरित्र की जो कल्पना तुमने की थी उसका मिलान इस परिच्छेद में दिए गए उसके चरित्र से करो तथा दोनों के अन्तर का समाधान करो।

३—राजसिंह, संग्रामसिंह, वीरसिंह तथा उदयभानु के वंशगत सम्बन्धों को संक्षेप में समझाओ।

४—इस परिच्छेद में औरङ्गजेब के चरित्र पर क्या प्रकाश पड़ता है 'पितृघाती' और 'भ्रातृघाती' विशेषणों की उपयुक्तता को भी समझाओ।

—०—

तीसरा परिच्छेद

औरङ्गज़ेब के सामने

उदयभानु का हर्ष उसके हृदय में न समाता था। बहुत दिनों से कमलकुमारी को प्राप्त करने की इच्छा थी। परन्तु जब कमलकुमारी का विवाह वीरसिंह से होगया तो उसकी इच्छा का कोई अर्थ ही न रहा। निराश हो औरङ्गज़ेब से मिल कर उसने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया और नीच कुल की मुसलमान लड़कियों से शादी की। परन्तु जिस प्रकार बिना जाने ही कोई मनुष्य कल्पवृक्ष के नीचे पहुँच कर अपनी अभीष्ट वस्तु की अकल्पित प्राप्ति कर लेता है उसी प्रकार इस समय उदयभानु की अवस्था हुई। उसने कभी कल्पना तक न की थी कि कहीं ऐसा विलक्षण योग भी प्राप्त होगा कि जिसने पहले उसका अपमान किया था वही मनुष्य अब उसके काबू में आजाए। ऐसी दशा में यह तमाम घटना योग उसे बिना माँगे हुए अमृत के थाल के उपहार के समान मालूम हुआ। हाथ में आई हुई लक्ष्मी को भला कौन अस्वीकार करता है? उसने पुनः संग्रामसिंह और कमलकुमारी की ओर देखते हुए कहा, "संग्रामसिंहजी! मैं आपसे पुनःप्रार्थना करता हूँ कि आप अपने मनमें व्यर्थ दुःख न करें। आप अब मेरे साथ इस कन्या को ले चलिए। मुझे स्वीकार है कि मैं काक हूँ, किन्तु कितने ही दिनों तक चूने में डुबो डुबो कर मैंने अपने पङ्ख सुफेद कर लिए हैं। इसलिए बाहर से तो मैं हंस बन ही गया हूँ। अब मुझे यह हंसी देने में आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए

अब इसे बादशाह आलमगीर के सामने ले चलिए। यह बाकी लोग तो विश्रान्ति की मौज लूट रहे हैं। इसलिए आप अपनी कन्या और इस दूसरी इसकी सखी को लेकर निश्चिंत भाव से मेरे साथ चल सकते हैं। और यदि यह दूसरी वापिस लौट जाना चाहे तो मैं इसके जाने का प्रबन्ध करा दूं।"

देवल-देवी को अकेली जाना स्वीकार नहीं था उसने शपथ खाई कि मैं कमलकुमारी को छोड़ कर कहीं न जाऊँगी। वह संतप्त हो बोल उठी, "उदयभानु! हम तुझे नीच, दुष्ट तो समझते ही थे परन्तु तेरी दुष्टता और नीचता इस पराकाष्ठा को पहुंच जायगी इसका शायद हमें कभी ध्यान न हुआ था। क्या तेरे लिये इतने मनुष्यों की जान लेना तथा सती होती हुई किसी साध्वी के कार्य में रुकावट डालना उचित है? इस भारी पाप का जवाब तू आगे जाकर कैसे देगा?"

उदयभानु ने शांत भाव से हँसते हुए कहा, "देवल-देवी! कमलकुमारी को वीरसिंह के प्रेत अथवा पादुका के साथ सती होकर जाने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि वह उसकी स्त्री नहीं है। मैंने मन में उसके पहले ही इससे विवाह कर लिया है। बल्कि कहना चाहिए, मैंने तो इसे परपुरुष के प्रेत के साथ सहगमन करने के अधर्म से बचाया है। इसलिये तुम मन में कुछ वहम न करो और न तुम्हें अब इसके साथ ही चलना उचित है क्योंकि यह अब मेरी पत्नी है। जिस सुख को प्राप्त करने के लिये मैंने अपने प्राण तक खर्च किये होते वह सुख बिना आयास ही आज मैंने पाया है। इससे मालूम हो सकता है कि परमेश्वर की सत्य

इच्छा क्या है। मगर अब तुम से बातें करने के लिए मेरे पास समय नहीं। अगर तुम मेरा कहना मानो तो अब न ठहरो, अपने घर जाओ। मैं तुम्हें पहुंचाने के लिये तुम्हारे साथ एक सिपाही किये देता हूँ जो तुम्हें तुम्हारे पति के पास पहुंचा देगा।"

यह कह कर उदयभानु अपने सिपाहियों के पास गया और कुछ पूछने लगा।

कमलकुमारी ने विचार किया—यह दुष्ट अब न छोड़ेगा और नाना प्रकार के उपद्रव करेगा ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कौन जा सकता है? जो कुछ संकट आएँगे सब झेलने पड़ेंगे। देवलदेवी को क्यों नाहक घसीटा जाय। इसके बाद वह अपनी सखी से बोली, "देवल! तू भी क्यों अपनी जान जोखिम में डालती है। अगर यह तुम्हें पहुंचाने को तयार है तो तेरा चला जाना ही अच्छा है। और तेरे साथ चलने से मुझे कुछ लाभ भी नहीं होगा। मेरे शरीर पर जो कुछ बीतेगी उसे सब को झेलना होगा ही। परन्तु तू यदि वापिस चली जायगी तो किसी से कह कर छुटकारे का उपाय भी हो सकेगा। इसलिए मेरी बात मान कर तुम वापिस चली जाओ। पिताजी की जो कुछ अवस्था होगी सो भगवान ही जाने।"

यह कह कर कमलकुमारी ने अपने पिता की ओर देखा। संग्रामसिंह बेसुध पड़े हुए थे। ऐसी दशा में उसे उनके बचने में भी संदेह होने लगा। यह देख देवलदेवी ने कमलकुमारी से कहा "कमल! तुम कुछ भी कहो, जब कि मेरे शरीर में प्राण है तब तक मैं तुम्हें हरगिज न छोडूंगी। अगर ये लोग मेरी हत्या कर

डालें तो बात दूसरी है। पर जब तक मैं जीती हूँ तब तक तुम्हें एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ सकती जो कुछ भला बुरा नसीब में है वह साथ ही साथ क्यों न भोग लें। अगर छुटकारा पाने का समय आएगा तो दोनों साथ जाएँगे।"

यह अच्छा हुआ कि इनकी बातचीत की तरफ उदयभानु का ध्यान नहीं था। वह अपने सिपहियों को दो तीन डोलियाँ लाने की आज्ञा दे रहा था। आज्ञा देने के बाद वह इन दोनों के निकट आया और संग्रामसिंह की अवस्था के विषय में पूछने लगा।

संग्रामसिंह बिलकुल निश्चेष्ट हुए पड़े थे। आस पास क्या हो रहा है, इसकी उन्हें कुछ सुध नहीं थी। उदयभानु डर रहा था कि कहीं यह मर न जाएँ। इसका कारण यह नहीं था कि उनकी मृत्यु से उसे दु:ख होता। वह डर इसलिए रहा था कि उनके जाने पर उस औरंगजेब के सामने मेवाड़ के एक शूर राजपूत को बन्दी बना कर लाने की शेखी मारने का मौका नहीं मिलता। अतएव, उसको बड़ी इच्छा थी कि औरंगजेब के सामने पहुंचने तक कम से कम यह न मरें और इसके लिए वह प्रयत्नशील भी था। इसलिए वहाँ से रवाना होने से पूर्व उसने उन दोनों से न बोलने का ही विचार किया और अपने साथियों से बातचीत करने के बहाने अपना समय काटा।

थोड़ी देर के बाद तीन डोलियां आईं। उन तीनों में संग्रामसिंह, कमलकुमारी और देवलदेवी, इन तीनों के बैठने के लिये उदयभानु ने कहा परन्तु देवलदेवी ने नहीं माना। उसने कहा कि जिस रथ में बैठकर हम यहां आए थे उसी में संग्रामसिंह को

कर हम भी बैठेंगी। उनके पास हमारे बैठे बिना काम न चलेगा। उदयभानु ने देखा कि अवसर दुराग्रह का नहीं है। इसलिए उसने अपने आदमी भेज कर बलों को, जो लड़ाई के समय वहाँ से भाग गये थे, ढुँढवा मँगाया। तदनन्तर उसने रथ जुतवाया और देवलदेवी की इच्छानुसार संग्रामसिंह को उसके भीतर बिठवाया। उसके बाद कुछ प्रयत्न से कमलकुमारी और देवलदेवी भी उनके पास ही रथ में बैठ गईं।

कुछ क्षण के बाद मंडली वहाँ से रवाना हुई। रथ के दोनों ओर सिपाही चल रहे थे। उदयभानु अपने डेरे में आया और साथ में चालीस पचास चुनीदे सवार, तीन डोलों तथा एक बैल गाड़ी लेकर दिल्ली की तरफ़ चला। वापिस जाते समय तमाम सेना अपने साथ लेते जाना मूर्खता थी। उदयभानु ने सोचा कि बादशाह से खड़े खड़े तमाम घटनाएँ बयान कर उनकी आज्ञा ले दक्षिण को चल देंगे। अपनी छावनी में आते ही उसने हुक्म दिया—"अब उदयपुर के राज्य में होकर जाने से कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि अगर आज की घटनाओं की खबर यहां पहुंच गई तो बुरी हालत में फँसना होगा और नहीं मालूम उस समय कौन प्रसंग आ उपस्थित हो। इसलिए कुछ रास्ता पीछे हटकर उचित स्थान पर मुकाम कर, जब तक मैं दिल्ली से लौटूँ तब तक, इन्तज़ार करो।" यह आज्ञा देकर उसने दिल्ली का रास्ता पकड़ा।

संग्रामसिंह की देख भाल के लिये उदयभानु ने एक हकीम भी जो कि सेना के साथ आया था, साथ ले लिया। उसने बड़े परिश्रम से संग्रामसिंह के जख्म से रक्त का बहना बन्द किया और उनके

जीवन की कुछ २ आशा हुई। कुछ समय के बाद उदयभानु दिल्ली पहुँचा और उसने बादशाह को आने की खबर पहुँचवाई।

परन्तु इधर एक और ही घटना हो गई। जिस समय उदयभानु दक्षिण के लिए रवाना हो चुका था उस समय बादशाह को उसके संबन्ध में कुछ संदेह हुआ और उसने उसके पीछे एक गुप्त जासूस भेज दिया। उसने पाँच सात मुकाम तक तो उसका पता पाया पर इसके आगे कोई पता न चला, और यह सोचकर कि इतनी जल्दी कोई इतनी दूर नहीं पहुँच सकता है उसने वापिस लौट कर बादशाह से कह दिया कि उदयभानु दक्षिण के रास्ते नहीं गया है। इसके बाद जब उसकी फिर तलाश करवाई गई तो अरावली के पर्वत की ओर उसका पता लगा। हुक्म की ठीक तौर से तामील न करने के कारण बादशाह उस पर बड़ा नाराज हुआ और उसे आधे ही रास्ते से वापिस बुलवाकर उचित शिक्षा देने का उसने इरादा किया इसी समय उदयभानु का दूत भी औरंगजेब के पास पहुँचा। पहले पहल तो बादशाह ने क्रोध प्रकट करने के लिए उसने मुलाकात करना अस्विकार किया और न उसे कोई हुक्म ही दिया। परन्तु आठ रोज बाद उसे मिलने बुलवाया और हुक्म को पाबन्दी न कर दूसरे रास्ते से दक्षिण जाने का उपक्रम करने के लिए उसे बहुत डाटा डपटा। उदयभानु को विश्वास था कि बादशाह से जब कहेंगे कि संग्रामसिंह को कैद किया है तो वह क्रोध रहित हो क्षमा कर देगा बल्कि इतना ही ही नहीं वह कुछ पुरस्कार भी देगा। पर अब वास्तविक अवस्था यह नहीं थी। उदयभानु ने अतिशयोक्ति का अवलंबन कर अपनी

लड़ाई का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ा कर किया और बतलाया कि सग्रामसिंह को पकड़ने में उसे अपनी चतुरता की पराकाष्ठा दिखानी पडी किन्तु बादशाह कुछ कम उस्ताद न था। उस पर इसका कुछ असर न हुआ वह असल बात समझ गया और कमलकुमारी तथा उसके पिता को हाजिर करने के लिए उसने उदयभानु को आज्ञा दी

इस समय उदयभानु बड़ी दुविधा में पड़ा। उसे यह संदेह हुआ कि कहीं बादशाह कमलकुमारी के सौंदर्य पर लट्टू होकर उसे अपने ही जनाने में न रखले। परन्तु दूसरा उपाय ही न था ? चुपचाप उसे बादशाह के हुक्म के अनसार करना पड़ा और उसने उनको उसके सामने हाजिर किया।

संग्रामसिंह मरणोन्मुख थे। वह बोल भी न सकते थे। पर कमलकुमारी ने निश्चय किया कि वह निडर होकर बादशाह से अपनी स्थिति निवेदन करेगी और उस दुष्ट की करतूत बताकर अपने को मुक्त कर देने के लिए औरङ्गजेब से प्रार्थना करेगी। वह यह जानती थी कि बादशाह भी स्वयं दुष्ट है और हिन्दूधर्म का परम द्वेषी है परन्तु जैसे डूबता हुआ मनुष्य घास का भी आश्रय ग्रहण करता है उसी प्रकार कमलकुमारी की भी इस समय दशा थी। अतएव अपना निश्चय स्थिर कर वह बादशाह के सामने खड़ी होकर बोली, "बादशाह ! मुझे यह स्वीकार करने में जरा भी आपत्ति नहीं है कि आपका धर्म अच्छा है। आपको दूसरों के धर्मों से चाहे कितनी ही घृणा हो परन्तु पतिव्रता जैसे हमारे धर्म में है वैसी ही आपके धर्म में भी है। जिस समय में अपने

पतिव्रता-धर्म का पालन कर रही थी उसी समय उस पवित्र प्रसंग में विघ्न डालकर इस दुष्ट ने जाकर हमें गिरफ्तार किया और यहाँ ले आया। शाहशाह! अब उचित यही है कि आप इसे दण्ड देकर हम तीनों की स्वतन्त्रता प्रदान करें। आपके धर्म में भी स्त्रियों के पतिव्रता-धर्म पर जोर दिया गया है। मुझे आप अपनी लड़की समझ कर यह भिक्षा दीजिए। एक बार इसे भिक्षा चाहे न भी दें परन्तु मेरी मुक्ति कीजिए।"

उसका यह साहस का भाषण सुन औरंजेगब को बड़ा आश्चर्य और कौतुक हुआ। लेकिन वह तो दुष्टों का दुष्ट था—वह इस बात को कैसे मानता? यह अवसर ऐसा था कि उदयभानु को प्रसन्न कर उसकी कृतज्ञता प्राप्त करे। फिर भला औरङ्गजेब उसे कैसे छोड़ सकता था। एक क्षण कौतूहल से कमलकुमारी की ओर देख उसे उस बेचारी के ढाढ़स और भोलेपन पर हंसी आई। वह बोला "ऐ परी! तेरी समझ के मुआफिक तेरा कहना वाजिब है। किन्तु परमेश्वर यह मंजूर नहीं करता कि तू एक झूठे धर्म के लिए अपना सुन्दर शरीर अग्नि में भस्म कर दे। इस उदयभानु को ऐसा वैसा न समझना। यह बड़ा शूर, बड़ा ही चतुर और बड़ा ही दूरदर्शी है। अगर तू इससे निकाह करना चाहे तो तुझे कुछ भी पाप न लगेगा। धर्म विरुद्ध इसमें कुछ भी नहीं है।"

इसके बाद उसने कहा, "मगर तेरे पति को मरे हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं इसलिए यह मुनासिब ही है कि इतनी जल्दी विवाह करना तुझे पसन्द न हो। इसके लिए मैं तुझे तीन

महिने की अवधि देता हूं। तीन महिने तक तुझे यह किसी तरह की तकलीफ न दे पाएगा मेरे हुक्म का इसने अनादर किया है और मुझे इसे शिक्षा देनी है। मेरी इसे यही शिक्षा है कि तेरे इसके साथ तीन महिने तक रहते हुए भी यह तुझसे बात तक न करे।"

इतना कहकर औरङ्गजेब ने उदयभानु की ओर देखा। तदनन्तर उससे बोला, "उदयभानु ! हुक्म की ठीक तामील न करने के संबन्ध में मुझे तुमको वास्तव में देहान्त-शिक्षा देनी उचित थी। परन्तु तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास तथा कुछ प्रेम भी है, इसलिए मैंने यही साधारण सी शिक्षा दी है। पर अब यहीं मेरे मस्तक की शपथ लो कि दो महिने के भीतर ही कोंडाणे पहुंच जाओगे और उसके एक महिने बाद तक, यानी आज से तीन महिने तक इससे कोई बात न करोगे। पूरे तीन महीने बीतने पर उसी दिन रात के बारह बजे अगर तुम्हारी इच्छा हो तो काजी को बुलवाकर इसके साथ निकाह करा लेना। उसके पहले अगर कुछ गड़बड़ करोगे तो याद रक्खो कि आलमगीर क्षमा करना नहीं जानता—वह तुम्हारे रत्ती २ टुकड़े कर डालेगा, और नहीं तो तुम्हें जीते ही को, गीदड़ों और कुत्तों को खिला देगा।"

इस प्रकार समझाकर बादशाह ने उससे शपथ लेने को कहा। जब उदयभानु शपथ ले चुका तो वह फिर हंसकर बोला "इस शपथ तथा तीन महिने की अवधि का यही हेतु है कि तुम तीन महीने तक अपना काम अच्छी तरह करो वहां पहुंचने के बाद एक महीने तक तो खूब अच्छी तरह काम करना तुम्हारे

लिए बिलकुल लाजिमी है। इस बात का ध्यान रहे कि जिस तरह और जो काम तुम करो, उसकी मुझे फ़ौरन खबर मिलती रहे।'

इसके बाद पुन: उसने कमलकुमारी की ओर देखा और कहा, "बेटी! जाओ, क्रूरता से अपना देह भस्म करना ठीक है और न बादशाह ही मुझे इसकी अनुज्ञा दे सकता है। और देखो, इस उदयभानु को बद्दुआ मत देना बल्कि उसके कल्याण का ही चिन्तन करना। तीन महीने बाद तुम खुद समझने लगोगी कि जो कुछ मैंने किया सो अच्छा ही किया है। ठीक तीन महीने कब खत्म होते हैं यह जानने की तुम्हारी इच्छा होगी। मगर तुम मुसलमानी तारीख न समझोगी। इसलिए जरा ठहरो, किसी पण्डित से पूछकर तुम्हारे ही संवत के मुआफिक तुम्हें तारीख बतादूंगा।"

यह कहकर उसने एक पण्डित को बुलवा भेजा और जब पण्डित आगया तो उससे पूछा कि आज कौन सी तिथी है। जब पण्डित ने कार्तिक वदि नवमी बतलाई तो बादशाह ने हंसकर दुष्टता से नेत्र संकुचित करते हुए कहा, "कमलकुमारी! माघ वदि नवमी के रोज तीन महीने पूरे होंगे। उसी दिन प्रथम पति के निमित्त तुम्हें अपना पतिव्रता-धर्म समाप्त करना होगा।" तदनन्तर वह उदयभानु से बोला, "और उदयभानु! अगर माघ वदि नवमी के पूर्व तुमने इसे छेडा तो तुम्हारा शपथ भंग होगा। इसलिए इस तिथि को अच्छी तरह याद रखना। अब तुम कमलकुमारी को अपने साथ ले जाओ। संग्रामसिंह को यहीं रहने दो। मैं उसे तन्दुरुस्त करा दूंगा और फिर उसे क्या करना

नहीं। उदयभानु के चले जाने के बाद देवलदेवी ने ऊपर की मंजिल पर जाकर एक चिट्ठी लिखी और परदे की आड़ से उसे उस राजपूत के शरीर पर फेंक दिया।

राजपूत ने उस चिट्ठी को लिया और उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—कल फकीर के वेश में दो बजे यहां आओ। रोटी दूंगी। उसमें एक चिट्ठी रहेगा और उससे सब कुछ तुमको विदित हो जायगा।

जब संध्या समय देवलदेवी चिट्ठी लिखने बैठी तो पत्र का कलेवर बहुत ही बढ़ गया। परन्तु इस बात की कोई परवा न कर के उसने उस चिट्ठी को रोटी में रख दिया।

दूसरे दिन उसने बहाना किया कि हर दशमी के दिन मैं स्वयं रोटी बना कर एक सुबह के वक्त और दूसरी शाम को अपने हाथ से किसी फकीर को दिया करती हूं। इस प्रकार अगले रोज ठीक समय पर उसने वह रोटी उस फकीर को दी और संध्या समय पुनः आने को उससे कहा। जब दुबारा वह फकीर आया तो रोटी देते समय छिपाकर उसने एक चिट्ठी उसके पैर तले डाल दी।

परन्तु, यह राजपूत कौन था और उस चिट्ठी में क्या लिखा था यह आगे मालूम होगा।

उसी रात को, जब चन्द्रमा का उदय हुआ, उदयभानु कमल-कुमारी और देवलदेवी को साथ ले दक्षिण की ओर चल दिया।

अभ्यास—

१—उदयभानु, औरंगजेब तथा कमलकुमार को बातचीत का सवेर लिखो और बतलाओ कि औरंगजेब की बातचीत मे उसकी क्या नीतिपटुता प्रकट होती है। उसकी नीतिपटुता का और भी एकाध उदाहरण इसी परिच्छेद में से दो।

२—देवलदेवी ने जिस व्यक्ति को रोटी में चिट्ठी दी वह, तुम्हारी समझ में, कौन था, चिट्ठी देने का क्या उद्देश्य था, तथा चिट्ठी देने के लिये देवलदेवी ने क्या उपाय निकाला ?

३—इस परिच्छेद में आए हुए समस्त विदेशी शब्दों का हिन्दी अर्थ लिखो तथा मूल शब्दों और उनके हिन्दी अर्थ का अलग २ वाक्यों में प्रयोग करो।

४—नए कठिन हिन्दी शब्दों का चुनाव करके उनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

—०—

चौथा परिच्छेद

विवाह का निमंत्रण

उमराठे गाँव बहुत छोटा था। परन्तु इस गांव में माघ सुदि नवमी के रोज, अर्थात् गत परिच्छेद में जो घटनाएँ हुईं उसके ढाई महिने बाद, बड़ी धूमधाम मची हुई थी। कोंकण की आबादी बहुत घनी नहीं थी परन्तु वह गाँव अब तानाजी मालुसरे के, जो शिवाजी का दाहना हाथ था, कब्जे में था। इसलिए उसकी जन-संख्या बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त और भी एक कारण

था। सूबेदार तानाजी किसी काम के लिये महाराज से अनुमति लेकर यहां आये थे इसलिए नहाँ के गांवों में से और लोग भी इनके साथ आगये थे साथ ही अन्यान्य बारगीर, जमादार आदि भी सूबेदार के साथ आगये थे जिससे उस गांव में मानों एक छोटा सा छावनी हो गई थी। अपने ही गाँव का रहने वाला तानाजी एक सूबेदार हुआ है और शिवाजी के गले का हार बन गया है, यह गांव वालों के लिये एक बड़े अभिमान और हर्ष की बात थी। उसकी वीरता की बातें सुनकर वृद्ध लोग कौतुकान्वित होते थे और नौजवानों को यह आशा बँधती थी कि हम भी ताना जी के हुक्म के अनुसार महाराज के लश्कर में रह कर एक दिन तानाजी की तरह ही सूबेदार बनकर अपने गावों में लौटेंगे। छोटे छोटे बच्चे तानाजी, शिवाजी, मुगल बादशाह, बीजापुर का बादशाह आदि व्यक्तियों की भूमिका लेकर राज्यस्थापना करने के लिये किले अधिकृत करने का खेल खेला करते थे। यह वर्णन करना असम्भव है कि वह ग्राम एक बड़े शूरवीर पुरुष की जन्मभूमि होने के कारण वहाँ के लोगों में कितना आत्माभिमान जागृत हुआ और कितनी बड़ी आकांक्षाएँ उत्पन्न हुईं। इस समय ग्राम में वह प्रधान व्यक्ति थोड़े ही दिन विश्राम करने पाया था कि 'उसे एक बार देखें, यदि उससे एक बार बातें करने का अवसर मिले तो बड़ा अच्छा हो, न हो तो उसके मुँह से महाराज की कथाएँ ही सुनें' आदि कारणों से आज पन्द्रह-बीस रोज से तानाजी के घर के आस पास लोगों की भीड़ लगी हुई थी और, आज तो माघ सुदि ९ के रोज गांव के सब लोग तानाजी के बाड़े में इकट्ठे हो रहे

थे। सब लोगों के चेहरों पर आनन्द केवल आनन्द छाया हुआ था। सूबेदार तानाजी अपने वस्त्र पहन कर, घोड़े पर सवार, भाला बरछी हाथ में लिए हुए एक अति वृद्ध मनुष्य से जो उन्हीं की तरह एक दूसरे घोड़े पर सवार था बातचीत कर रहे थे। उनके पास लगभग आठ वर्ष की उम्र का एक बालक तानाजी के सामने ही वस्त्र पहने हुए साथ में छोटे छोटे हथियार लिये एक छोटे से घोड़े पर सवार होने की कोशिश कर रहा था। उस बालक के तथा तानाजी के चेहरे में इतना साम्य था कि इन दोनों में पिता पुत्र का सम्बन्ध है, यह बताने की जरूरत ही न थी रायबा-यही उस छोटे सरदार का नाम था—मुखाकृति में अपने पिता की प्रतिमा ही था। बाल स्वभाव के अनुरूप, वह अपने पिता का अनुकरण करना चाहता था। इसीलिए उसने पिता के समान ही कपड़े पहने और अश्व के ऊपर सवार हो उनके साथ जाने का हठ किया।

उसके सिर पर मरहठी फैशन की एक पगड़ी थी जिसके दो पेंच कान के ऊपर से नीचे की तरफ़, जैसे कि उस समय सिपाही बाँधा करते थे, बंधे थे। वह एक पायजामा पहने हुए था और उसके ऊपर उसने एक अँगरखा पहन रक्खा था जो कि कमर तक आता था। उसकी कमर में एक कमरबन्द लिपट रहा था जिसमें एक छोटी तलवार लटक रही थी। हाथ में उसी के योग्य एक बरछी और पीठ पर एक ढाल थी। इस प्रकार यह छोटा सरदार अपने पिता के आगे घोड़ा चलाने के लिये आतुर हो रहा था। गाँव की सब स्त्रियाँ उसे बड़े प्रेमभरे नेत्रों से देख अपने बच्चों

को गोद में लेकर आनन्द और प्रेम के आँसू बहाती थी। तानाजी की माता सबसे आगे थी। वह रायबा के निकट पहुँची और बोली, "अभी तक हठ नहीं पूरा हुआ? चलो अब उतरो। अगर महाराज के पास पहुंचोगे तो महाराज लड़ाई पर भिजवा देंगे।"

यह सुनकर सब लोग हँस पड़े, परन्तु उस बालवीर ने कहा, "क्यों क्या मैं लड़ाई लड़ना नहीं जानता? जैसे महाराज ने, अफजलखाँ को मारूँगा।" यह कह कर बड़ी वीरता से उसने अपनी तलवार को हाथ लगाया। उसकी इस अकड़ को देख कर सब लोग कौतुकाविष्ट हो हँसने लगे। बहुतेरे बूढ़े आँसू बहाने लगे।

उस बालक को परावृत करने में विफल हो उसकी वृद्धा दादी बोली "तो क्या अपने विवाह का निमन्त्रण देने तुम खुद जा रहे हो? महाराज क्या कहेंगे? वे कहेंगे कि यह बालक निरा पगला है, पगला। और कहेंगे कि इसका विवाह अभी क्यों करते हो?- इसे यहीं रहने दो।"

उस समय उस बालक का अभिनय तथा उसे अपनी छोटी तलवार उठाते हुए देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे। वृद्ध उसे घोड़े पर बैठा देख कर वृद्ध स्त्री से बोला, "जानकी! अब यह न सुनेगा। क्यों इसे रख लेने का वृथा प्रयत्न करती हो? चलने दो इस शैतान को। एक बार जाकर देखेगा कि कितनी तकलीफ वहां उठानी पड़ती है, तब फिर कभी न कहेगा कि मैं भी चलूंगा। हां, जरा सुनलो बच्चाजी! जब एक दिन भूखे रह लोगे तो मालूम होगा कि इसमें क्या सुख होता है। तानाजी! अब क्यों गप्पें मार रहे हो? चलो न।"

इस वृद्ध पुरुष की आयु अस्सी वर्ष के ऊपर थी। पर, उसका शरीर जवान का जैसा कसा हुआ और मजबूत था। उसके बाल सुफ़ेद हो गए थे—बस, इतना ही वृद्धावस्था का चिन्ह उसमें दिखाई देता था। उसकी दृष्टि गिद्ध के समान तेज थी, दांत सब मजबूत, और बदन में चपलता ऐसी जैसी कि पचीस वर्ष के नौजवान में रहती है। यह व्यक्ति तानाजी का मामा था। गांव के लोग उसे 'शेलारमामा' कह कर पुकारते थे और उसकी बहन, तानाजी की माता भी उसे विनोद से इसी नाम से पुकारा करती थी।

शेलारमामा ने तानाजी से ऊपर की बात कह कर अपने घोड़े को इशारा दिया और आगे बढ़ने के लिए उत्सुकता दिखाई। तानाजी ने अपनी माता को विनीत भाव से प्रणाम किया और सब उपस्थित जनों से एक बार राम राम कर अपने बेटे से बोले, "हां चलिए, रायबा सरदार!" रायबा ने भी बड़ी उत्सुकता से अपने घोड़े के एड़ लगाई।

जब वे चल दिये तो उपस्थित लोगों में से कुछ ने चिल्लाकर कहा, "देखो, तानाजी! महाराजा से खूब आग्रह करना, उन्हें यहां लेते ही आना। हम सब आपकी राह देखेंगे। महाराज के चरण हमारे गांव को अवश्य लगने चाहिएँ। देखना है, आपका वहां कितना प्रभाव है! और शेलारमामा! अजी ओ शेलारमामा! आप जातो रहे हैं, लेकिन वहां से अपयश लेकर न आना। हम सब बैठे आपकी राह देखेंगे जब आओ तो महाराज आ रहे हैं, यह खबर लेकर आना। नहीं तो आवोगे तो कुछ ....।"

को गोद में लेकर आनन्द और प्रेम के आँसू बहाती थी। तानाजी की माता सबसे आगे थी। वह रायबा के निकट पहुँची और बोली, "अभी तक हठ नहीं पूरा हुआ? चलो अब उतरो। अगर महाराज के पास पहुंचोगे तो महाराज लड़ाई पर भिजवा देंगे।"

यह सुनकर सब लोग हँस पड़े, परन्तु इस बालवीर ने कहा, "क्यों क्या मैं लड़ाई लड़ना नहीं जानता? जैसे महाराज ने, अफजलखाँ को मारूँगा।" यह कह कर बड़ी वीरता से उसने अपनी तलवार को हाथ लगाया। उसकी इस अकड़ को देख कर सब लोग कौतुकाविष्ट हो हँसने लगे। बहुतेरे बूढ़े आँसू बहाने लगे।

उस बालक को परावृत करने में विफल हो उसकी वृद्धा दादी बोली "तो क्या अपने विवाह का निमन्त्रण देने तुम खुद जा रहे हो? महाराज क्या कहेंगे? वे कहेंगे कि यह बालक निरा पगला है, पगला। और कहेंगे कि इसका विवाह अभी क्यों करते हो?- इसे यहीं रहने दो।"

उस समय उस बालक का अभिनय तथा उसे अपनी छोटी तलवार उठाते हुए देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे। वृद्ध उसे घोड़े पर बैठा देख कर वृद्ध स्त्री से बोला, "जानकी! अब यह न सुनेगा। क्यों इसे रख लेने का वृथा प्रयत्न करती हो? चलने दो इस शैतान को। एक बार जाकर देखेगा कि कितनी तकलीफ वहां उठानी पड़ती है, तब फिर कभी न कहेगा कि मैं भी चलूंगा। हां, जरा सुनलो बच्चाजी! जब एक दिन भूखे रह लोगे तो मालूम होगा कि इसमें क्या सुख होता है। तानाजी! अब क्यों मुंह ताक रहे हो? चलो न।"

इस वृद्ध पुरुष की आयु अस्सी वर्ष के ऊपर थी। पर, उसका शरीर जवान का जैसा कसा हुआ और मजबूत था। उसके बाल सुफ़ेद हो गए थे—बस, इतना ही वृद्धावस्था का चिन्ह उसमें दिखाई देता था। उसकी दृष्टि गिद्ध के समान तेज थी, दांत सब मजबूत, और बदन में चपलता ऐसी जैसी कि पचीस वर्ष के नौजवान में रहती है। यह व्यक्ति तानाजी का मामा था। गांव के लोग उसे 'शेलारमामा' कह कर पुकारते थे और उसकी बहन, तानाजी की माता भी उसे विनोद से इसी नाम से पुकारा करती थी।

शेलारमामा ने तानाजी से ऊपर की बात कह कर अपने घोड़े को इशारा दिया और आगे बढ़ने के लिए उत्सुकता दिखाई। तानाज़ी ने अपनी माता को विनीत भाव से प्रणाम किया और सब उपस्थित जनों से एक बार राम राम कर अपने बेटे से बोले, "हां चलिए, रायबा सरदार!" रायबा ने भी बड़ी उत्सुकता से अपने घोड़े के एड़ लगाई।

जब वे चल दिये तो उपस्थित लोगों में से कुछ ने चिल्लाकर कहा, "देखो, तानाजी! महाराजा से खूब आग्रह करना, उन्हें यहां लेते ही आना। हम सब आपकी राह देखेंगे। महाराज के चरण हमारे गांव को अवश्य लगने चाहिएँ। देखना है, आपका वहां कितना प्रभाव है! और शेलारमामा! अजी ओ शेलारमामा! आप जाते रहे हैं, लेकिन वहां से अपयश लेकर न आना। हम सब बैठे आपकी राह देखेंगे जब आओ तो महाराज आ रहे हैं, यह खबर लेकर आना। नहीं तो आवोगे तो कुछ ....।"

शेलारमामा, हो-की उम्र वाले एक वृद्ध ने चिल्ला कर कहा "ए शेलारमामा ! महाराज से कहना कि हमारे गांव के तथा पास के गांव के लगभग १००० धागमीर अपनी तरफ होंगे, उनकी सेवा ध्यान में रखकर वह यहां पधारने की कृपा करें। मना न करें।,,

शेलारमामा ने उत्तर दिया, "अजी कल्लू सहाब ! आप क्यों फिक्र कर रहे हैं। अगर निमन्त्रण देने पर महाराज ने आने से इन्कार किया तो मैं चुपचाप बैठने वाला आदमी नहीं हूँ। मैं उससे आग्रह करूँगा—कहूँगा 'महाराज, आपको हमारे ग्राम में अवश्य चलना चाहिये। मैं अस्सी वर्ष का बुड्ढा आपके पिता के समान हूँ, मेरे तीनों बेटे आपकी सेवामें हैं,—यह तानाजी तो हाथ में सिर लिये आपके यहां खड़ा रहता है। तिस पर भी चलने से इन्कार करते हैं ! क्या आपका यह कहना है कि हम लोग काला मुँह लेकर यहां से वापिस जायें ? फिर लोग क्या कहेंगे ? कल्लूजी !' मैं बिना हलचल किए न रहूँगा। स्वामी की रातदिन सेवा करें और स्वामी हमारी विनय को स्वीकार न करें ! क्या शिवाजी महाराज इस तरह 'नहीं' कर सकते हैं ? आप अच्छी तरह तयारी करके रखिए। वे रायबा की शादी में शरीक होने के लिए अवश्य पधारेंगे—यह निश्चय समझो। मेरा भी नाम शेलारमामा है- मैं कभी अपयश लेकर वापिस आने वाला नहीं। इसी समय, आज ही कहूँगा कि हम बारह दिन पहले ही आपको निमन्त्रण देने आये हैं। इसलिए जो कुछ यहां करना हो उसकी पहिले ही व्यवस्था कर दीजिए। हमारे गांव

में चल कर, चाहे थोड़े ही दिन सही, आपको रहना जरूर पड़ेगा।"

कल्लूराम शेलारमामा के यह वाक्य सुन मन में खुश तो जरूर हुए, परन्तु शेलारमामा को खूब चिढ़ाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। बोले, "अजी साहब! यहां तो बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बनाते हो, पर बातों के अनुसार काम करो तभी है। जनाब! शिवाजी महाराज को बहुत कार्य करने हैं। दे देंगे कुछ पुरस्कार और फिर उसी में खुश होकर लौट आओगे घर—और क्या।"

"हां, हां, रहने दो। शिवाजी को इन्कार करने तो दो, फिर बताऊंगा उन्हें। कहूंगा, 'अगर आप हमारी बात नहीं सुनते हैं तो हम भी आपके लिए क्यों जान दें?' अजी उनकी ताक़त नहीं 'ना' कहने की। उनके बाप शहाजी से मैं नहीं डरता, फिर उनसे तो क्या डरूंगा। मेरी विनती को वह अवश्य स्वीकार करेंगे और अवश्य आवेंगे। आप निश्चिन्त रहिए।"

यह प्रतिज्ञा सुन कल्लूजी को समाधान हुआ। उन्हें निश्चय हो गया कि शेलारमामा शिवाजी महाराज को लिए बिना न आवेंगे और सब लोगों को भी भरोसा हो गया। अपने गांव में तानाजी के यहां की शादी के लिए शिवाजी आने वाले हैं, यह सुनकर हरएक हर्षित हुआ। महाराजा का स्वागत किस तरह करना चाहिए, गृह कैसे सजाना होगा, झंडी, पताका आदि किस प्रकार लगाए जाएँ, आदि विषयों पर आपस में विचार होने लगा। लोगों का विश्वास था कि शिवाजी महाराज शिव का

प्रत्यक्ष अवतार हैं। मुग़लों ने देश को बहुत कुछ सताया-इसलिए गरीब दुखियों की रक्षा करने के लिए शिवाजी के रूप में प्रत्यक्ष काशी-विश्वनाथ ने अवतार लिया है। सब लोगों के हृदय में उनके प्रति इतना अधिक पूजा का भाव था कि जिस गाँव में वह जाते उसका बड़ा ही भाग्य समझा जाता था और प्रत्येक मनुष्य यह चाहता रहता था कि महाराज हमारे ग्राम में आवें और हम उनकीपवित्र मूर्ति का दर्शन करें। सारांश यह कि उमराठे गाँव में रहने वाली जनता को अत्यन्त हर्ष हुआ और तानाजी, शेलारमामा और रायबा के राजगढ़ जाने के पहले और बाद में कितने ही दिनों तक बराबर शिवाजी महाराज का भावी आगमन ही लोगों की बातचीत का विषय था। सुबह के समय सो कर उठने से लगाकर रातको सोने जाने के वक्त तक प्रत्येक व्यक्ति को मानो महाराज का ही ध्यान रहता था। और जब यह सुवार्ता वहाँ से लगभग तीस चालीस कोस दूर रहने वाले लोगों के हाथ पहुँची तो वे भी शिवाजी का दर्शन करने के लिए आने का विचार करने लगे।

परन्तु, अब इन लोगों को यहीं आनन्द मनाते छोड़ अब महाराज को निमन्त्रण देने के लिए जाने वाले शेलारमामा, तानाजी और रायबा के साथ राजगढ़ चलेंगे।

ये तीनों व्यक्ति ऊपर लिखे अनुसार कपड़े पहन तथा हथि-यारों से सुसज्जित हो आगे २ चल रहे थे। उनके पीछे कोई दस सिपाही और चालीस बारगीर आ रहे थे वास्तव में इतने आद-मियों की आवश्यकता तो नहीं थी, परन्तु कुछ लोगों का साथ

होना अच्छा समझ उन्होंने मनुष्य साथ ले लिए थे।

ये तीनों आगे जा रहे थे। तीनों अपने मनमें एक ही मूर्ति का ध्यान कर रहे थे—मानों वृद्धावस्था, तारुण्य और बाल्य, तीनों अवस्थाएँ, मनुष्य का रूप धारण किए हुए उस समय जारही थीं। शेलारमामा अस्सी वर्ष के, तानाजी चालीस के और रायबा आठ वर्ष का था।

वे तीनों अपने २ मन में शिवाजी महाराज के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे-'जब कि हम लोग स्वयं ही आए हैं तो शिवाजी महाराज अवश्य ही हमारी विनती स्वीकार करेंगे। हम उनसे साफ और खुले तौर से कहेंगे, उनकी माता जीजाबाई से कहेंगे, और उसे भी साथ लेते आवेंगे।' इस प्रकार के विचार शेलारमामा के मनमें दौड़ रहे थे। तानाजी सोच रहे थे—'महाराज न मालूम किस चिन्ता नें मग्न होंगे, पहुँचते ही क्या खबरें सुननी होंगी, दिल्ली का बादशाह कौनसी चाल चलता होगा, बीजापुर का हाल-हवाल क्या होगा' इत्यादि। और रायबा तो निरा बालक ही था। वह इस फिक्र में पड़ा हुआ था कि किस प्रकार पिता का हर एक बात का अनुकरण किया जाय, "पिता ने लगाम को इस तरह पकड़ रखा है, मैं भी वैसे ही पकडूंगा। वह बर्छी को इस प्रकार हाथ में ले रहे हैं, मैं भी इसी तरह हाथ में ले लूंगा। फिर कभी २ शिवाजी महाराज कैसे होंगे, वह मुझ से क्या कहेंगे, मैं उनकी बात का किस प्रकार उत्तर दूंगा" आदि प्रश्न भी उसके छोटे से मस्तिष्क में घूमते। इसी प्रकार ये तीनों लोग जा रहे थे।

तानाजी को उस प्रदेश के सब लोग मानते थे। इसलिए राज-

गढ़ के रास्ते में जितने गाँव आते वहाँ के लोग उनकी खूब खातिर करते और शिवाजी से विशेष रूप से आग्रह करने के लिए उनसे कहते। रायबा छोटा था, राजगढ़ तक एक ही साथ यात्रा करने की उनमें शक्ति नहीं थी और न राजगढ़ पहुँचने के लिए उनको बहुत जल्दी ही थी। इसलिए मार्ग में तीन स्थानों पर मुकाम करने का इरादा करके वे चले थे।

उन्होंने पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ना आरम्भ किया। दो कोस तक किसी ने कोई बातचीत नहीं की। तब तानाजी शेलारमामा से बोले, "मामाजी! मेरी तो यही हार्दिक इच्छा है कि परमात्मा इस महापुरुष को दीर्घायु करे। फिर देखो कि यह किस तरह मुगलों की चटनी बनाकर स्वराज्य स्थापित करता है। जिस प्रकार महाराज रामचन्द्रजी ने प्रजा को सुख दिया था उसी प्रकार यह भी प्रजा को सुख देगा। हम तो उसके छुटपन के दोस्त हैं— बस, हमारी तो तभी से यह इच्छा रही कि यह हमें आज्ञा करे और हम उसकी आज्ञा का पालन करें। हम उसी समय से उसे राजा कहते हैं। उसकी एक-एक बात जब ध्यान में आती है तो कभी उमंग भी उठती है और हृदय इतना हर्षित होता है कि खास भाई का भी नहीं हो सकता। अभी मुझे उस बात की याद आ गई। हम छोटे थे, कोई अठारह-उन्नीस वर्ष के — सुलतानगढ़ लेने के

उसी तरह अभी अफ़जल खाँ रूपी कंटक का किस प्रकार उन्मूलन किया ! हरामजादा कहीं का ! महाराज का प्राण हरण करने के लिए कैसा पटजाल रचा, कितनी दगाबाजी की, कैसी मीठी-मीठी बातें बनाईं। चाहता था कि महाराज को असावधान पाकर अपना काम तय करे पर महाराज भी पूरे उस्ताद थे। उन्होंने विचार किया कि इन हरामियों का भरोसा क्या ? गौ के सामने भोजन रखकर उसे काटने वाले ये लोग हैं। इनसे हमेशा सावधान ही रहना चाहिए—न मालूम कब कौनसी घटना हो जाए। क्यों ? शेलारमामा जी !"

शेलारमामा ने उत्तर दिया—'ठीक ! ठीक ही तो किया महाराज ने। फिर क्या हुआ ?"

"महाराज की यह सावधानता काम आई। अफ़जलखाँ मद से उन्मत हो महाराज को तिनके के समान समझता हुआ आया और भेंट के बहाने महाराज की गर्दन पकड़ कर बगल में दबाने लगा, परन्तु महाराज पूरे तौर से सावधान थे। तुरन्त उन्होंने उचित कार्य कर अविश्वासी का घात किया। मैं उस समय वहीं मौजूद था। किसी भी कार्य में, किसी भी संकट में घबड़ाना तो वे जानते ही नहीं, बस, नौकरी अगर करनी हो तो ऐसे ही राजा की करे। मामाजी ! अगर महाराज मुझ से कहें कि इस चट्टान के नीचे कूद पड़ो तो मैं बिना किसी विचार के फ़ौरन कूद पड़ूंगा। शिवाजी की सेवा में मुझे मृत्यु प्राप्त हो तो कितने हर्ष की बात है। मगर जब कभी कोई संशय का काम होता है तो महाराज उसे स्वयं ही करते हैं। इसबार अगर कोई महत्व का काम निकला तो मैं उन-

से कहूँगा कि आप कुछ न कीजिए, मैं ही इस काम को करूँगा। मामाजी! हम जैसे लोगों को अगर मृत्यु आ जाए तो सैकड़ों लोग आगे बढ़ेंगे, पर महाराज की जान जोखिम में पड़ने से और आदमियों की क्या हालत होगी? आप ही बताइए!"

इस पर शेलारमामा बोले—"हाँ सच तो है, मैं भी उन्हें यही सलाह दूंगा कि आप अब खाली हुक्म दीजिए। पर तानाजी! क्या महाराज रायबा की शादी के लिये आवेंगे? अब ऐसा विचार होता है कि जानकी जीजाबाई ने प्रार्थना करने के लिए आती तो अच्छा होता। बहुत दिनों से मैंने उन्हें देखा नहीं ख़ैर, अब कहूँगा कि धन्य हो माता जिनके पेट से यह शिवाजी नहीं, प्रत्यक्ष महादेवजी उत्पन्न हुए हैं—विश्वनाथजी उत्पन्न हुए हैं! अरे रायबा! क्यों बेटा! थक तो नहीं गया? पहले कहता था कि मैं यों करूँगा, यों करूँगा। उस समय भी मैं कहता था कि साथ न चलो—तकलीफ़ न उठाओ—पर सुनता कौन?"

रायबा थोड़ा होशियार होकर बोला—"क्या कहते हो? मैं थक गया! मुझे तो थकावट बिलकुल भी नहीं मालूम होती। क्यों, मैं तो अभी पन्द्रह कोस और चल सकता हूँ। शिवाजी! मैं थका हुआ मालूम होता हूँ क्या?"

वैसी ही धूप में और भी पचीस कोस चले जा सकते थे। किन्तु उनके साथ में बालक था, इसलिए उन्हें धीरे २ चलना पड़ता था। हरियाली छाया में ठहर जाने, रायबा को कुछ खाने के लिये देते, उसकी हँसी उड़ाते, और थोड़ी देर आराम करके फिर आगे को चल देते। बस, इसी प्रकार यात्रा करते हुए पहाड़-पहाड़ी चढ़ते-चढ़ाते तीनों जन अपनी मंडली के साथ राजगढ़ के निकट आ पहुँचे शिवाजी महाराज उस समय राजगढ़ में थे और संयोग से उनकी माता भी प्रतापगढ़ से वहीं आई हुई थीं। गढ़ की तलैठी में यह खबर उन्होंने पाई तो शेलारमामा हर्ष से फूले न समाए।

गढ़ के नीचे आते ही, रिवाज के अनुसार पहले उपर खबर पहुँचवाई गई और फिर तीनों लोग धीरे २ ऊपर चढ़ने लगे। शिवाजी महाराज इस समय किस कार्य में मग्न होंगे?—पहुंचते ही हमसे क्या कहेंगे?—आदि प्रश्न इस समय उनके मन में तर्क-वितर्क उत्पन्न कर रहे थे शेलारमामा इस विचार में थे कि शिवाजी के सामने पहुंच कर उनसे क्या कहूँ और कैसे कहूँ?

इतनी मजिल चढ़ने के बाद रायबा के लिए गढ़ पर चढ़ना असम्भव था और न यह उचित ही था कि उसे चढ़ने दिया जाता इसलिए उसे एक नौकर के कंधे पर बिठा दिया गया था। रायबा उपर पहुँचने को इतना उत्सुक हो रहा था कि वह चाहता था कि नौकर, पिता और मामा चौगुने वेग से दौड़कर एकदम महाराज के सामने पहुँच जाएँ।

अन्त में मंडली उपर पहुँची। तानाजी आए हैं, यह खबर [illegible] से सुनते ही महाराज ने तुरन्त उन्हें पास [illegible]

उसे आज्ञा दी। इतने में वे सब सामने आकर खड़े हुए। शेला[र]
मामा झुककर उन्हें राम राम करना चाहते थे कि महाराज उ[ठे]
और एकदम उनका हाथ पकड़कर बोले, "मामा साहब! रा[जा]
तो हम जरूर हैं परन्तु आपके नहीं हैं। हम तो आपके छोटे बा[लक]
के समान हैं। आप हमारे पिता के सदृश हैं। आप ही के आशी-
र्वाद से हम इस बड़े पद को पहुँचे हैं। आइए, उपर इस गद्[दी]
पर विराजिए।"

शेलारमामा को महाराज ने दाहिनी ओर बिठाया, यह आद[र]
देख वृद्ध मामा को अति आनन्द हुआ और उनकी आँखें प्रेम के
आँसुओं से डबडबा आईं। उसी प्रेम से महाराज की पीठ प[र]
हाथ रखते हुए उन्होंने कहा, "शिवाजी महाराज! हम तो गरीब
आदमी हैं, केवल हमारी वृद्धावस्था को देख कर आप हमार[ा]
इतना आदर करते हैं। मेरा आशीर्वाद है कि आप कभी अपयश
न पायेंगे। जिनको देश के वृद्धों के आशीर्वाद मिलते हैं उन्हें अप
यश कभी छूता तक नहीं। मैं आज आपको निमन्त्रण देने आया
हूँ। रायबा आओ, महाराज को प्रणाम करो। महाराज! यह
आपके तानाजी का लड़का है। तानाजी ने इसका ब्याह करना
निश्चित किया है और [illegible] [illegible] बढ़ाने की [illegible], [illegible]
आपको इसमें जरूर आना होगा और चार दिन बाद लग्नविधि
की शोभा देखनी होगी, [illegible], हम गरीब हैं, पर मना मत करना।"

शेलारमामा इधर यह कह रहे थे और उधर रायबा महाराज
के पाँव पर गिर पड़ा। उसकी यह कोमल मूर्ति देखकर महा-
राज [illegible] आनन्द हुआ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], "[illegible]!

तुम तो हमारे छोटे सूबेदार हो। क्यों जी ? क्या अपनी शादी का निमन्त्रण खुद ही देने आए हो ? अच्छा देखें तो, तुम्हारी तलवार कैसी है ?"

इतना कह महाराज ने उसकी तलवार को स्पर्श किया। इतने में रायबा के मनमें न मालूम क्या आया —वह बोल उठा, "महा राज मुझे एक असली तलवार दिला दीजिए ! जी चाहता है कि पिताजी के साथ जाकर मैं भी मुगलों से लड़ पड़ूं।"

"ठीक ! तब तो खूब बनेगी। हमने तुम्हें 'छोटे सरदार' कहा सो उचित ही कहा। तानाजी ! यह तो आपसे भी तेज दिखाई देता है। इस समय क्या इसकी शादी है ? कल माताजी भी आप को याद करती थीं।"

"सरकार ! माताजी और आप जो कुछ फर्मायेंगे उसे करने को मैं हाजिर हूँ। अभी इसी घड़ी, कुछ करने को हो आज्ञा दीजिए।"

"इस घड़ी तो मेरा यही हुक्म है कि जल्दी से स्नान, भोजन की तयारी में लगो। इसके बाद इस विषय पर बातचीत होगी। एँ ! किसी ने माता जी को खबर पहुँचाई कि नहीं ?"

महाराज इस प्रकार एक तरफ बातचीत भी करते जाते थे और दूसरी तरफ लड़के से भी बोल रहे थे कि इतने में एक मुहर्रिर ने खबर दी कि एक जासूस आया है और महाराज से मिलना चाहता है। महाराज तुरन्त उठे और अपने खास महल के एक कमरे में चले गये।

अभ्यास—

१—शिवबा के बालचरित्र का कुछ परिचय दो।

२—शिवाजी की लोकप्रियता पर सप्रमाण अपने विचार प्रकट करो।

३—तानाजी और शेलारमामा के चरित्रों का कुछ वर्णन करो

४—इस परिच्छेद का सार दो पृष्ठों में अपनी ही भाषा में लिखो, तुम्हारे सारलेख में किसी पात्र के मुंह से कोई शब्द न कहलाए जायँ।

५—निम्नलिखित शब्दों की परिभाषा लिखोः—

बारगीर, जमादार, छावनी, लश्कर, किलेदार, चोबदार, मुहर्रिर, जासूस।

—०—

अपनी कृति के ऊपर अनेक बार खेद किया। 'अगर इतनी अक्ल न लड़ाकर कमलकुमारी और इस बुड्ढे को औरङ्गजेब के सामने हाजिर न करते तो फिर, जो चाहे सो करते—खुद मुख्तार तो हम ही थे। उस समय कौन पूछने आता ?' परन्तु उदयभानु तो चाहता था कि राजपूतों को पकड़ने के लिए कैसे २ प्रयत्न किए-यह बादशाह के सामने जाहिर करे। यहां तो सब मामला ही उलटा हो गया। उसे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। फिर उसने सोचा कि मार्ग में अब हम जो चाहें सो करें, औरङ्गजेब से कौन कहने जाएगा। और ऐसा करने के लिए उसने कुछ थोड़ा बहुत उपक्रम शुरू करना भी चाहा। किन्तु दूसरे ही क्षण एक दूसरा विचार आया। औरङ्ग-जेब बड़ा वहमी है। कौन जाने, उसने यह जानने के लिए कि हमारे हुक्म के मुताबिक काम होता है या नहीं, मेरे ऊपर कुफिया लोग नियुक्त कर दिए हों। मन में यह विचार कर उदय-भानु ने थोड़े दिनों के लिए यह उपक्रम बन्द कर दिया और जितनी जल्दी हो सका उतनी जल्दी यात्रा करके वह दक्षिण की ओर गया। उसका अभिप्राय यह था कि खूब जल्दी वहाँ पहुँचने पर एक बार बादशाह को यह लिख दिया जायगा कि आज्ञानुसार सब काम हो रहा है। साथ ही धीरे चलने में एक डर और भी था। शायद मार्ग में किसी राजपूत सेना से मुठभेड़ हो जाए और इस गड़बड़ में कमलकुमारी को कोई भगाकर ले जाय। अथवा यदि कोई सेना न भी मिले तो संभव है कि कमलकुमारी का ही

कोई हितैषी गुप्त रूप से आकर मेरा खून कर डाले। इस प्रकार के तरह तरह के कुतर्क उनके मन में आकर उपस्थित होने लगे और उदयभानु ने यही निश्चय करना उचित समझा कि तुरन्त इस प्रदेश से दक्षिण को चले जाएं। वहां फिर अपने मालिक आप ही हैं।

जिस समय कोई मनुष्य कोई अनुचित काम कर बैठता है तो कारण न होने पर भी उसे सदा डर ही लगा रहता है। वास्तव में उदयभानु के डरने का आज कोई कारण नहीं था। साथ में चार हजार सेना होने पर भी इसका भय करना कि मार्ग में अपने ऊपर कोई चढ़ाई न कर दे और कमलकुमारी को भगा न ले जाए बिलकुल व्यर्थ था। इसी प्रकार यह डर भी कि गुप्त रीति से आकर कोई खून कर देगा बहुत उपयुक्त नहीं था, अपने आसपास सतर्क लोगों का कड़ा पहरा रख किसी अजनबी पुरुष को निकट न आने देना ही काफी था। और इस प्रकार की व्यवस्था उदयभानु ने की भी जरूर। कमलकुमारी के ऊपर भी उसने कड़ा पहरा रखवाया। साथ ही यह गुप्त रूप से इस बात पर भी नजर रखता कि सिपाहियों को फुसला कर कोई

एक दो बार उसे ऐसा भी संदेह हुआ कि कोई छावनी में छिपा छिपा उसकी हत्या की ताक में रहता है पर खोज करने पर किसी बात का पता न लगा और न कोई ऐसा व्यक्ति ही दिखाई दिया जिस पर पूरा संदेह किया जा सके।

कमलकुमारी के विषय में वह बड़ा सख्त था। परन्तु तमाशे की बात यह थी कि अब वह उसके प्रति जरा जरा मृदु होने लगा था। एक समय नर्मदा के किनारे उसका डेरा लगा हुआ था। चांदनी रात थी। उदयभानु के मन में आया कि इस समय कमलकुमारी को बुलवाकर उससे कुछ अनुनय-विनय करें। परन्तु फिर उसके मन में आया कि उसके डेरे में जाकर ही उसको समझाना अच्छा होगा। उदयभानु ऐसा अविचारशील पुरुष था कि जिस समय जो उसके मन में आता वही कर डालता। तुरन्त वह कमलकुमारी के डेरे में पहुँचा। सिपाही को गड़बड़ न करने की आज्ञा दे वह एकदम कमलकुमारी के अन्तःपुर के पर्दे के पास जा खड़ा हुआ। वह पर्दे को हटाकर भीतर जाना ही चाहता था कि सहसा कमलकुमारी के जैसे रोने सिसकने और देवलदेवी के उसको समझाने की आवाज उसे सुनाई दी। देवलदेवी कह रही थी:—

"प्यारी कमल निराश क्यों होती हो ? जिन भगवान एकलिंगजी ने औरंगजेब जैसे दुष्ट बादशाह के मन में, दुःख न हो इसलिए, तीन महिने की अवधि देने की प्रेरणा की वह भविष्य में तुम्हारी सहायता नहीं करेंगे, यह कैसे कह सकती हो ? तुम मन में किसी तरह का खेद न करो। मेरा अन्तःकरण मुझसे

नहीं है ? अथवा खुद मुझ ही को मरवा डालने की तो यह कोई तैयारी नहीं है ? इस प्रकार के तरह तरह के विचार उसके मन में आने लगे। उसने इरादा किया कि कमलकुमारी के डेरे पर पहरा देने वाले दोनों आदमी हर रोज़ बदले जाएँ जिससे कोई पहरेदार लगातार दो रोज़ तक पहरे पर न रहने पाए। यह विचार मन में आते ही उसने फ़ौरन इसकी पूर्ति के लिए हुक्म भी दे दिया और यह भी आज्ञा दी कि हर एक पहरेदार पहरे के बाद हाज़िरी दिया करे। परन्तु इतना करने पर भी उसे तसल्ली न हुई। देवलदेवी की गुप्त बात जानने की उसकी उत्कट इच्छा जैसी की तैसी ही बनीरही इच्छा पूर्तिके लिए उसे कोई मार्ग भी दिखाई न दिया।

अन्त में, उसने देवलदेवी से ही किसी प्रकार जोड़ तोड़ लगा कर उस बात का पता लगाने का विचार किया। इस इरादे से उसने दो बार देवलदेवी को यह कहलाकर बुलवा भेजा कि मेरी तुमसे मिलने की इच्छा है। परन्तु देवलदेवी ने इस पर कोई ध्यान न दिया। तब उसने स्पष्ट रूप से उसे अपने पास आने की आज्ञा दी। इस पर देवलदेवी ने कहला भेजा, "तुम्हारे अधिकार में हम लोग पड़े हैं, हमें लाचारी से जिधर तुम्हारी इच्छा हो उधर जाना पड़ेगा। परन्तु कमलकुमारी को अकेली छोड़ मैं, क्षण भर के लिए भी क्यों न हो, कभी नहीं आऊँगी। अगर मुझे कोई ज़बरदस्ती पकड़ कर खींच ले जाए तब ज़रूर मेरा बस नहीं चलेगा। जो तुम्हें मुझसे कुछ कहना है तो तुम ही यहाँ आकर जो कुछ कहना हो कह जाओ।"

देवलदेवी का यह रूखा उत्तर पाकर उदयसिंह बड़ा उदास

हुआ। परन्तु उस समय वह कर ही क्या सकता था? एकदम उसे हटाकर कमलकुमारी से अलग रखने का भी उसे सहसा साहस न हुआ। हारकर, उसने उन्हीं के पास एक बार जाकर मीठी बातों से गुप्त बात निकालने का इरादा किया। और इस विचार में एक रोज़ उनके निवास पर जा पहुंचा। उसे देखते ही भय के कारण उन दोनों के होश उड़ गए।

इधर, कमलकुमारी को देख कर उदयभानु का पाषाण हृदय भी पिघल गया। क्या मेरे ही भय से इसकी यह दुर्गति हुई है—यह सोचकर वह चुपचाप खड़ा रहा। कमलकुमारी की अवस्था बहुत ही बुरी थी। वह केवल अस्थि-पंजर ही रह गई थी। शरीर की कांति इतनी निस्तेज हो गई थी कि उसके समान निस्तेज वस्तु दुनियां भर में ढूँढ़े न मिलती। अतएव आश्चर्य नहीं कि उसकी ऐसी हालत देखकर उदयभानु के कठोर विचार उसके मन ही में रह गए अगर इसे अब किसी प्रकार न छेड़ा जाए तो शायद यह बच जाए, नहीं तो जरूर यह रास्ते ही में मृत्यु के आधीन हो जाएगी। यह विचार कर उसने देवलदेवी से साफ कह दिया, "आज से मैं तुम लोगों से कुछ न कहा करूँगा। इतना ही नहीं—माघ वदि ६ के रोज़ भी मैं कमलकुमारी से केवल इतना ही पूछ लूंगा कि तुम मुझसे शादी करने को तयार हो या नहीं। अगर वह 'नहीं' कहेगी तो मैं उससे कोई कारण भी नहीं पूछूँगा और उसे राजपूताने वापिस लौटा दूँगा। पर, इसका तुम ध्यान रक्खो। ऐसा न हो कि यह सूखती चली जाए। मैं इसे देख तक नहीं सकता। मैं अब भी उसे छोड़ सकता हूं किन्तु इतनी ही

बात है कि आशा बड़ी बुरी चीज है।"

इतना कह कर वह वहाँ से लौट आया।

इस प्रकार देवलदेवी को आशा की झलक दिखाने में उसकी सद्बुद्धि की प्रेरणा हुई थी या दुर्बुद्धि की, यह कहना कठिन है। कभी २ ऐसे भी प्रसंग होते हैं कि दुष्ट-बुद्धि मनुष्य के मन में सद्बुद्धि जागृत हो जाती है और उसे दुष्कर्म से परावृत्त करती है, उसको, चाहे थोड़ी ही देर के लिए क्यों न हो, सच्चा अनुताप होता है और कम से कम उस समय वह निश्चय करता है कि पुनः इस कर्म में कभी प्रवृत्त न होंगे। शायद उदयभानु के सम्बंध में भी ऐसी कोई बात हुई हो। संभव है, उसका अनुताप सच्चा ही हो। कमलकुमारी की अवस्था ही ऐसी थी कि किसी भी कठोर हृदयी को उस पर दया आ जाती। इतने पर भी, अपनी ही प्रेरणा से इसकी यह हालत हुई है, यह सोचकर प्रत्यक्ष काल को भी अनुताप होता। अतः उदयभानु की मानसिक अवस्था यदि इस प्रकार की हुई हो तो इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। देखना केवल इतना ही है कि यह अनुताप कितने समय तक रहता है। अथवा उसके मन में यह भी विचार आया हो कि इस समय उसकी अवस्था सुधर जाने पर, फिर उसके ऊपर मन चाहा अत्याचार किया जा सकता है। अतएव किस प्रेरणा से उसने इस समय ऐसा व्यवहार किया, यह समझना कठिन है। हाँ, उपर्युक्त रीति से उसने कमलकुमारी के डेरे में आकर इतनी बात कही—इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं।

कमलकुमारी के विषय में हम ऊपर कह चुके हैं। उसकी चित-

चर्या ही ऐसी थी कि यह देखकर आश्चर्य होता था कि वह
इतने दिन कैसे जीती रह सकी। वह सुबह से शाम तक और
शाम से सुबह तक सदा रुदन करती रहती थी। वह पति की
पादुका हृदय से लगाकर निरंतर उसी की ओर देखती, पति का
ध्यान करती और उनकी पूजा करती। भोजन की थाली का स्पर्श
तक न करती। देवलदेवी उससे बहुत कुछ आग्रह करती और
केवल उसी की खातिर से कमलकुमारी थोड़ा बहुत दूध पी लेती
या कुछ खा लेती। परन्तु खाते खाते वह प्रायः वमन कर देती
और खाया-पीया सब निकल जाता। दवा आदि बिलकुल न
लेती देवलदेवी ने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि वह इस प्रकार
रहकर आत्महत्या न करे, परन्तु सब व्यर्थ था। कमलकुमारी
उसकी कुछ भी न सुनती और हरबार 'मेरे जीने से क्या लाभ है'
यही उत्तर देती। इसी प्रकार वह अपने दिन काटती थी कि एक
रोज़ एक विचित्र घटना होगई।

देवलदेवी कुछ काम के लिए अपने डेरे के द्वार पर खड़ी हो
बाहर कुछ देख रही थी कि इतने में उसकी दृष्टि पहरा देने वाले
एक आदमी के ऊपर जा पड़ी और एक क्षण तक वह वहीं रुकी
रही। परन्तु दृष्टि के इस रुके रहने में केवल आश्चर्य ही नहीं
अधिक आनन्द का भी एक बड़ा अंश मिला हुआ था जो उसके
मुख पर झलकता था। उसके नेत्रों में, उसके कपोलों पर एक
निष्कपट तेज चमक रहा था। वह उस व्यक्ति की ओर बहुत
ही देर तक देखती रही और बहुत देर तक सोचती रही कि
मनुष्य से क्यों करती [illegible] या नहीं। अन्त में वह और

के आज तक कभी ऐसा साहस नहीं किया, अब करने से कोई उलटा परिणाम न हो, वह लौटने लगी इतने में वही पहरेवाला मनुष्य डेरे के निकट आया और जिस प्रकार पहरेदार दरवाजे के पास खड़े होते हैं उसी तरह आकर खड़ा होगया। देवलदेवी मन में सोचने लगी कि कहीं मुझे यहाँ खड़ी देख कर ही तो यह मनुष्य यहाँ नहीं आया है। अनंतर, पहरेदार और भी दरवाजे के निकट आया और दरवाजे से भिड़गया। तदनन्तर, जूता ठीक करने के बहाने नीचे झुक कर एक पैर निकाला और एक छोटी सी चिट्ठी डेरे के दरवाजे के नीचे से भीतर को ढकेल दी। इसके बाद एकही जगह खड़ा रहना मानो बेकार समझ वह इधर उधर घूमने लगा।

देवलदेवी यह सब बातें देख रही थी। उसने तुरन्त चिट्ठी को उठाया और उसे पढ़ा। पढ़ते ही उसका मुखमंडल खिल उठा मालूम होता था कोई बड़े ही आनन्द की बात उसने पढ़ी है। उसी आनन्द के जोश में वह कमलकुमारी के पासगई और बोली, "सखी कमल अपना छुटकारा जरूर होगा, अब चिन्ता न करो तुमतो स्वयं बुद्धिमती हो—मैं जो कहूँ उसे सुनो। मैंने आज तक तुमसे कुछ न कहा; परन्तु आज कहने में कोई हर्ज नहीं है। मैं अभी तक इसी भय से नहीं कहती थी कि कोई छिपकर न सुनले और आकर उदयभानु से न कहदे। इसी भय से आजतक नहीं बोली। लेकिन इस समय मैं तुमसे कहूँगी, पर इस शर्त पर कि तुम अपना हठ छोडदो। नहीं तो तुम इतनी दुर्बल हो कि छुटकारे के समय तुमसे चला तक नहीं जावेगा और फिर अपना किया-

कराया सब बिगड़ जाएगा। मेरे मुँह से जब सब बात सुनोगी, असल बात जानलोगी, तो आप ही तन्दुरुस्त होने की इच्छा करोगी। सुनो अब, मैं तमाम बात तुमसे कहती हूँ।"

फिर उसने बड़ी सावधानता से कमलकुमारी के कान में कुछ कहा। जैसे जैसे कमलकुमारी सुनने लगी और देवलदेवी की बातें उसके हृदय में उतरने लगीं वैसे वैसे उसके चहरे पर नाना प्रकार के विकारों की छाया दृष्टिगोचर होने लगी। पहले-पहल संशय उत्पन्न हुआ, फिर उसके स्थान में आनन्द दिखाई दिया और फिर इस आनन्द का पर्यवसान हर्षातिरेक में होता हुआ मालूम पड़ा। इसके बाद जब देवलदेवी ने उसे दो चिट्ठियां दीं और उसने उन्हें पढ़ा तब तो वह हर्ष से उछलकर बोल उठी, "यदि यह सच हो और ऐसा हो जाए और मैं अपने पिताजी को देख सकूँ, तो मुझे और तेरे..........."

परन्तु देवलदेवी ने झट उसका मुँह बन्द करके कहा, "कमल! कमल! कमल! कितनी जोरसे बोल रही हो! वाह! इसलिए मैंने आज तक तुमसे नहीं कहा था। अभी तो मैंने तुमसे सब बातें कही भी नहीं कि पहिले ही से तुम इस तरह करने लगी कि तमाम बना बनाया खेल बिगड़ जाए। मगर खैर, अब ऐसा न करना। अब अच्छी तरह खाओ, अच्छी तरह पीओ और अपने शरीर को पुष्ट करो, जिससे अगर चार कोस चलने का भी मौका आ जाए तो कोई दिक्कत न मालूम हो। नहीं तो कहीं तुम्हारी दुर्बलता के कारण सब मामला ठंडा न हो जाए।"

कमलकुमारी की उस समय ऐसी ही अवस्था थी कि देवल-

देवी उससे कहती और वह मान लेती। अतएव उसने उत्तर दिया, "यदि तू और वे मेरे लिए इतने कष्ट उठाते हों तो मेरे लिए भी उचित नहीं है कि तुम्हें दुःख दूं। मैं अब तुम जैसे कहोगी वैसे ही करूँगी।"

उसी दिन से कमलकुमारी ने अपने जीवन-क्रम में परिवर्तन कर दिया।

यह उदयभानु के दक्षिण में पहुँचने का वृत्तान्त है। वहां पहुँच कर उसने साथ लाई हुई बादशाह की चिट्ठी जसवंतसिंह और शाहज़ादा मुअज्ज़म के पास भेज दी तथा स्वयं कोंडाणे के क़िले पर जाकर रहने लगा। यहां उसने जासूस आदि नियुक्त कर शिवाजी और जसवंतसिंह के परस्पर संबन्ध जानने का प्रयत्न आरम्भ किया। इस उपक्रम में फलनिष्पत्ति की ओर उसका ध्यान नहीं था। जो कुछ बादशाह को लिखना चाहिए था सो उसने पहले ही अपने मन में निश्चित कर लिया था और उसके अनुसार उसने आठ दिन के भीतर ही लिख भेजा कि, "जसवंतसिंह और शाहज़ादा मुअज्ज़म गुप्त रूप से शिवाजी को सहायता देते हैं। शाहज़ादा दूसरा उपाय न देखकर शायद जसवंतसिंह से सहमत हुए होंगे। जसवंतसिंह तो पूरा राजद्रोही बनकर शिवाजी से मिला हुआ है। आपकी दी हुई चिट्ठी भी उसने शिवाजी को ज़रूर दिखाई होगी यह मेरा संदेह है। बीजापुर तथा गोलकुण्डा के राज क़ाबिज़ करना और शिवाजी पर नज़र रखना तो केवल उसका एक बहाना है। उसका इरादा यही है कि बादशाही सेना के द्वारा इन दोनों राज्यों को लेकर शिवाज

को सौंप दें। मैं जो अज कर रहा हूँ इसमें जरा भी संदेह नहीं है। शिवाजी के हाथ में दक्षिण का सब सूबा चला जायगा और साथ ही और दूसरे राज भी उसके हाथ में आ जाएँगे। इस प्रकार जब उसका बल बढ जायगा तो आपकी तमाम सेना भी उसके विरुद्ध आकर सफल होसकेगी या नहीं-इसमें मुझे संदेह है। जसवंतसिंह के फ़रेब से शिवाजीकी प्रतिष्ठा बढ़रही है उसकी प्रतिष्ठा की बढ़ोत्तरी कम करने का एक ही उपाय है—और वह यह कि जसवंतसिंह को यहाँ से दूर हटा दिया जाए। जब तक दक्षिण में जसवंतसिंह मौजूद है तब तक शिवाजी को गिरफ्तार करना या उसके उपद्रव बन्द करना असंभव है—कारण, जसवंतसिंह उसके दबाव में आकर उसे स्वेच्छानुसार कर उगाहने से नहीं रोकते। और इसका फल यह हुआ है कि बादशाह के बड़े बड़े सरदार जो कि नमकहलाल कहे जाते थे अब, सब, शिवाजी से मिल गए हैं। इसलिए इन सब बातों को देखते हुए यहाँ का बन्दोबस्त नए सिरे से करना होगा। जसवंतसिंह को अगर यहीं ठहरने दिया जायगा तो वह किसी दूसरे को अपने काम में हाथ भी न डालने देगा—उलटे और कोई बाधा ही उत्पन्न करेगा। इसलिए सबसे पहले उसकी यहाँ से रवानगी करा देनी ही उचित है।

"मैंने तमाम हक़ीक़त निवेदन कर दी है। उसे ध्यान में रख कर हुक्म फ़रमाइएगा।' मैं आपकी आज्ञानुसार कोंडाणे पर रह रहा हूँ। इस क़िले की आप कोई चिन्ता न करें। मैं जब से क़िले पर आया हूँ सब लोगों पर दबदबा जमाए हुए हूँ। सब बंदोबस्त कर दिया है। मगर इस एक ही क़िले का बन्दोबस्त ठीक रखने से

काम नहीं चलेगा। आखिर दक्षिण में तो यह लुटेरा शिवाजी चाहे जो कर ही रहा है और जसवंतसिंह उससे सहमत है ही। ऐसी अवस्था में एक ही गढ़ अपने कब्जे में रखने से कोई विशेष लाभ नहीं। अगर शाहंशाह की इजाजत हो जाए तो यह गुलाम एक डेढ़ महीने में ही इस हिकमती शिवाजी की हिकमत को हवा में उड़ा उसे क़ैद कर बादशाह के क़दमों में लाने को तैयार है। यहाँ का हाल-हवाल देखते हुए यह बात नामुमकिन नहीं है। केवल जसवंतसिंह को यहाँ से उत्तर की ओर हटा लेना जरूरी है। फिर शाहज़ादा मेरे ही साथ रहेंगे और मैं उनका मन आपकी ओर से साफ करा कर ऐसी कोशिश करूँगा कि उनका आपके प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाए। मरहठों से सुलह रखने में अपने ही खिलाफ चलते हुए भी उन्हें इसकी कुछ खबर नहीं होती,—इसका कारण जसवंतसिंह ही है।

"मैं जहाँपनाह के हुक्म की राह देख रहा हूँ—हुक्म का दावेदार हूँ। इस समय कोंडाणे गढ़ की रक्षा कर रहा हूँ। यह थैली इसीलिए साँडनी-सवार के हाथ भिजवा रहा हूँ।"

इस प्रकार चिट्ठी को रवाना कर, भविष्य की घटनाओं पर विचार करता हुवा और माघ वदी नवमी के कितने दिन हैं, इस इन्तज़ार में उदयभानु कोंडाणे किले पर रहने लगा।

अभ्यास—

१–उदयभानु के चरित्र की ओर क्या-क्या नई बातें इस परिच्छेद से मालूम होती हैं?

२-अपनी तथा कमलकुमारी की कैद के बारे में देवलदेवी के किस प्रकार के विचार थे तथा कमलकुमारी को सान्त्वना देने में उन विचारों का क्या योग था ?

३-देवलदेवी द्वारा कमलकुमारी को दी गई सान्त्वना के शब्द छिप कर सुन लेने पर उदयभानु के मनमें किस प्रकार के तर्क वितर्क उत्पन्न हुए और उनका उसके भावी आचरण पर क्या प्रभाव पड़ा ?

४-इस परिच्छेद में आए हुए समस्त नए हिन्दी शब्दों, समस्त नए उर्दू शब्दों तथा समस्त मुहावरों का संग्रह कर उनका अर्थ लिखो तथा अपने स्वतन्त्र वाक्यों में उनका प्रयोग करके दिखाओ।

५-उदयभानु ने बादशाह के पास जो चिट्ठी भेजी उसका बहुत संक्षेप में सार लिख कर उस चिट्ठी के विषय की सचाई के सम्बन्ध में अपना मत लिखो।

६-दक्षिण में पहुँचने के बाद कमलकुमारी की जीवन-चर्या में जो विशेषता तुम्हें दिखलाई दी हो उसे प्रमाण सहित लिखो।

—०—

छठा परिच्छेद

महाराज की चिन्ता

तानाजी, शेलारमामा आदि लोगों का खान-पान हो चुका। किन्तु महाराज अपने महल से न आए। सब लोग आश्चर्य करने लगे। महाराज में एक अच्छा गुण यह था कि वे अपने लोगों के भोजन आदि के विषय में भी ध्यान रखते थे। लड़ाई के मौकों पर भी जब कभी कहीं मुकाम होता तो पहले तमाम छावनी में

घूमकर महाराज देखते कि प्रत्येक शिलेदार, बारगीर, नौकर इत्यादि लोगों के खाने-पीने का इन्तज़ाम होगया है या नहीं। उसके बाद वे अपने खाने की चिन्ता करते। इस सूक्ष्म दृष्टि के कारण हर कोई महाराज के ऊपर अत्यन्त भक्ति-भाव रखता था। हर एक की यह धारणा थी कि हम पर महाराज का प्रेम है और इसी धारणा के वश वे उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे। प्रत्येक अपने प्राणों को महाराज के चरणों में मन-वचन-कार्य से अर्पण कर चुका था। जिस समय महाराज किसी से कोई काम करने को कहते थे तो वह समझता था मानों उसे उसी क्षण स्वर्ग मिल गया हो।

महाराज की स्मरणशक्ति भी विलक्षण थी। जब वह एक बार किसी को देख लेते और उसका नाम आदि सुन लेते तो उसे कभी न भूलते। जब कभी एक बार देखा हुआ मनुष्य उन्हें दुबारा कहीं मिलता तो वह उसे अपने पास बुलाते और उसकी कुशल-क्षेम पूछते। यह देखकर कि महाराज को हमारा नाम तक याद है लोग अपने ऊपर उनकी विशेष कृपा समझते और आनन्द से फूले न समाते।

हर कोई यही सोच रहा था कि इतनी सूक्ष्म दृष्टि होने पर भी आज तानाजी, शेलारमामा आदि के विषय में, जो कि विवाह का निमंत्रण देने आए थे, महाराज ने भोजन-सम्बन्धी पूछताछ क्यों नहीं की। जीजाबाई भी आश्चर्य करने लगीं और, महाराज क्या कर रहे हैं, यह देखने के लिए उन्होंने एक चौबदार को भी भेजा। परन्तु महाराज अपने महल में ही बैठे थे। पत्र वाला जासूस भी

महाराज ने आते ही देखा कि तानाजी तथा शेलारमामा का भोजन हो चुका है। यह देखते ही महाराज को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा, "वाह ! हमें आने में ज़रा सी देर हो गई, इस लिए आपने ठीक-ठीक भोजन भी नहीं किया। मगर हां, भूल तो हमारी ही है पर, शेलारमामा साहब ! हम तो आपके बच्चे हैं। अगर हमें आने में ज़रा सी देर हो गई तो क्या हम पर नाराज़ होकर भोजन न करना आपके लिए उचित है। घर तो आप ही का है—किसी दूसरे का तो नहीं। अपने घर में अपनी देखभाल अपने आप ही करनी चाहिए। और फिर, माताजी तो यहां मौजूद थी हीं। तिसपर भी, तानाजी तो हमारे ही हैं, इन्हें तो अपनी फिक्र खुद ही करनी चाहिए थी। माताजी ! बताइए, इन्होंने ठीक-ठीक भोजन किया है या नहीं ? और हां जी, छोटे सूबेदार ! आपका कैसा मिज़ाज है ? हमारे साथ लड़ाई पर चलोगे न ? पहले यह बताओ कि शादी करोगे या हमारे साथ लड़ने चलोगे ?"

"महाराज ! अगर लड़ने के लिए साथ ले चलते हैं तो पहले वहीं चलूँगा" रायबा ने बड़ी उत्सुकता के साथ कहा और अपनी तलवार को हाथ लगाकर बोला। "महाराज इस छोटी सी सी तलवार से दुश्मनों का कैसे सामना कर सकूँगा ? पर हां मैं तो दुश्मनों के लड़कों से तो लड़ूंगा—उनसे लड़ने के लिए यह काफी है। मैं पिता जी से बार बार विनय करता हूं कि मुझे एक तलवार दिला दें पर वे सुनते ही नहीं।"

"पिता नहीं देंगे तो न सही, हम ही दे देंगे, फिर तो ठीक रहेगा ?"

"बस, बस, फिर क्या है ! पर पिता जी को भी तलवार क्या आपने ही दी थी ?" रायबा ने पूछा। इतने में शेलारमामा बीच में ही बोल उठे, "महाराज ! इसकी बकवाद तो यनी ही रहेगी। आप जो कुछ कहेंगे उस पर कुछ न कुछ यह जवाब देता ही रहेगा। पर महाराज ! क्या आप हमारे गांव को अपनी चरण धूलि से पवित्र न करेंगे। हमारे ग्राम निवासी आपके दर्शनों के लिए बड़े व्याकुल हो रहे हैं।"

"जरूर, जरूर आएंगे। मामा साहब ! आप हमें क्यों ले जाते हैं ? क्या आपका निमन्त्रण स्वीकार न करना हमारे लिए उचित है ? पर आप जानते ही हैं कि आजकल के दिन बड़े कठिन हैं किस समय क्या बात उपस्थित हो जाये यह नहीं कहा जा सकता। औरङ्गजेब का एक क्षण भी विश्वास नहीं कर सकते इस क्षण जो कुछ वह कहेगा बिलकुल उसका उलटा दूसरे क्षण में कर दिखाएगा। उसका वह लोकरा और जसवन्तसिंह दोनों स्नेह तो जरूर दिखाते हैं, परन्तु उनका भरोसा ही क्या है शायद यहां आकर स्नेह दिखाने ही के लिए बादशाह ने उन्हें हुक्म दिया हो। यह मुगल किस समय किस तरह की चालबाज़ी करें इसका कोई यकीन नहीं। मामाजी ! आप जानते हैं कि सांप का यकीन एक बार किया जा सकता है मगर मुगलों का नहीं। आप अभी थके हुए हैं, जरा आराम कर लीजिए, फिर इस विषय में बातचीत करेंगे। तानाजी अगर जरूरत समझो तो तुम भी आराम करो।"

थी और इसका कारण जानने के लिए महाराज ने जासूस भी रवाना किए थे। आज के पत्र ने उनकी हरेक शंका दूर करदी। बालाजी आवजी ने पत्र समाप्त किया। सब लोग चुपचाप बैठे थे। तब जीजीबाई बोली, "हां! मेरे मन में बहुत दिनों से विचार उठ रहा था कि कोंडाणे का किला लेना ही चाहिए। बादशाह बड़ा ही कपटी है। इसीलिए उसने उसे अपने ही कब्जे में रक्खा जिससे कि जब चाहे तब शत्रुओं के ऊपर खूब दूर तक अपना दॉव चला सके। परसों मैं खड़ी थी कि कोंडाणे गढ पर नजर गई। उसी समय विचार हुआ कि कहूँ कि इस गढ़ को लेकर उसके ऊपर सब सेना रख दो। इसके बिना ठीक बन्दोबस्त नहीं रह सकता।"

शिवाजी बोले, "माताजी! आपका कहना अवश्य सच है। परन्तु सुलह के विरुद्ध चलने का उस समय कोई सबब नहीं था। अब तो चाहे जो कर सकते हैं—कारण कि, उदयभानु को ससैन्य यहां भेजने की वजह से हमारे मन में शंका उत्पन्न होने लगी है। इसके अलावा, अपने को एक सुभीता भी है। इसपत्र से यह अच्छी तरह समझ में आ सकता है कि बादशाह ने उदयभानु को जसवन्तसिंह तथा शाहज़ादा के ऊपर नज़र रखने को भेजा है। ये दोनों जब इस बात को जान लेंगे तो उसे हरगिज सहायता नहीं देंगे। और बादशाह का तुम्हारे ऊपर कितना विश्वास है-यह दिखाने के लिए यह पत्र मैं जानबूझ कर उन दोनों के पास रवाना करने वाला हूं। कुछ थोड़े दिनों के लिए वे चुपचाप बैठे कि [illegible] सब [illegible] हुआ। गढ़ कब्जे में आने के बाद फिर ये

हमारे विरुद्ध चाहे जितनी ही गड़बड़ मचाएँ, हम उनकी एक न चलने देंगे। वे लोग जालसाजी करने वाले तो नहीं मालूम होते बल्कि जान पड़ता है बादशाह के विरुद्ध हमसे ही मिलना चाहते हैं। परन्तु सावधान रहना सबसे अच्छा है। इसलिए हमारा पहला काम गढ़ लेना है। उसी की तैयारी में अब लगना चाहिए। उदयभानु नया आदमी है। वह इस प्रदेश से परिचित हो इससे पहले ही उसे भगा देना जरूरी है। पूरी व्यवस्था करने के लिए उसे किसी प्रकार की अवधि देना मुनासिब नहीं। गढ लिए बिना अब काम नहीं चलेगा।"

महाराज के यह शब्द सुनते ही तानाजी बोल उठे, "सरकार मैं बहुत दिनों से प्रार्थना करने वाला था कि अब आप किसी भी लड़ाई में मुख्य भाग न लें। हम नौकर किस बात के हैं? लड़ाई में अगर आपका कुछ भी बाल बाँका हो तो कितनी बुराई होगी? पहले की बात दूसरी थी। अब आपके ऊपर तमाम स्वराज्य अवलंबित है। यहाँ रहने के लिए या राजगढ़ में रहने के लिए मुझे हुक्म दीजिए।"

"तानाजी! तुम्हारे प्राणों और हमारे प्राणोंमें अन्तर क्या है"?

"महाराज! मेरे प्राण और आपके प्राणों में अन्तर क्याहै-यह आप पूछते हैं? सरकार! अगर आपके प्राणों को यत्किञ्चित भी क्षति होगी तो स्वराज्य की इस विशाल इमारत काउन्मूलन करने के लिए शत्रु को जरा भी कठिनाई न होगी। वह अपने आप ही गिर जाएगी। आप ही इस इमारत के आधार—स्तंभ हैं। अगर मेरे ऊपर कोई आपत्ति आई तो उसका इतना भी

देखिएगा कि मैं किस तरह गढ़ पर अधिकार करता हूँ। पर जैसे यह तानाजी कहता है वैसे ही आपको करना होगा। यहाँ से आप ज़रा भी न हिलें। गढ़ काबिज़ करने के बाद वहाँ होली सी जला-येंगे जिससे समझ लीजिएगा कि गढ़ सर होगया और फिर जो कुछ मुनासिब होगा सो करना, आपका अख्त्यार रहा। क्यों ताना? ऐसा ही है न? महाराज! इस तानाजी को मैं धन्यवाद देता हूँ कि इसने हमारे कुल की इज्जत रखली। भाई! अब तो तुम सूर्याजी को समाचार देने के लिए किसी दूसरे को भेज दो। मैं तो तुम्हारे साथ ही जाऊँगा। बतलाऊँगा कि बूढ़े की हड्डी में कितनी ताकत है। उन मुग़लों की मुण्डी दबाने के लिए मेरे समा-न बूढ़ा ही काफी है।"

बूढ़े की वीरश्री देखकर महाराज विस्मित रह गए। उनका खयाल था कि बूढ़ा तानाजी को इस काम से परान्मुख ही करेगा —कहेगा कि, ब्याह छोड़कर इस फन्दे में क्यों फँसते हो, महा-राज अगर किसी दूसरे को भेजते हैं तो क्यों नहीं मान जाते, परन्तु बूढ़ा तो सबसे ही तेज निकला। इतने में वह तानाजी की ओर मुड़ कर फिर बोला, "अगर अवसर आया तो बन्दर की तरह गढ़ पर चढ़ूँगा।"

इस समय बूढ़े का अभिनय अपूर्व ही था। उसे देख जीजा-बाई को हँसी आगई और वह अपने पुत्र से बोलीं, "बेटा! इन्हीं लोगों के साहस और आशीर्वाद से यह राज्य चलता है। अपने [illegible] कितने ही पुराने हों, परन्तु उनका मूल्य बहुत बड़ा है।"

शेलारमामा इस पर तुरन्त बोले, "मा ! यह सब तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है। धन्य है तेरा उदर कि जिसमें ऐसा हीरा पैदा हुआ जिससे हमारा जीवन भी मूल्यवान् है। अब यहाँ से हम रवाना होंगे। रायबा उधर सोता होगा, उसे तुम्हारे ऊपर सौंपा है। गढ़ लेकर आएँगे तो उसे ले जाएँगे।"

इतने में तानाजी उठे और उन्होंने महाराज तथा जीजाबाई को शिर से प्रणाम किया तथा आशीर्वाद और महाराज के हाथ का लगाया हुआ पान लेकर वह और मामाजी दोनों जाने के लिए तैयार होगए।

महाराज ने उन्हें आनन्द से विदा किया।

अभ्यास—

१–महाराज शिवाजी के स्वभाव का कुछ विवेचन करते हुए उनकी लोकप्रियता का रूप निर्धारित करो।

२–तानाजी की स्वामिभक्ति और देशभक्ति पर अपनी सम्मति उदाहरण सहित दो। साथ में वृद्ध शेलारमामा का भी थोड़ा सा वर्णन करो।

३–शिवाजी, तानाजी, शेलारमामा और रायबा की बातचीत को बातचीत के ही रूप में अपने ढंग से संक्षेप में लिखो।

४–"अगर जरूरत समझो तो आराम करो"—महाराज के इन शब्दों मे तानाजी ने क्या संकेत ग्रहण किया और क्यों ग्रहण किया ?

५–"राज्य के ये स्तम्भ कितने ही पुराने हों" परन्तु उनका मूल्य बहुत बड़ा है"–इसका अर्थ विशद् रूप से समझाओ और बताओ कि ऐसा कहने में जीजाबाई का क्या उद्देश्य था।

६–इस परिच्छेद के समस्त मुहावरों, नए हिन्दी शब्दों और उर्दू शब्दों का संकलन करके उनके अर्थ और प्रयोग लिखकर दिखलाओ।

—०—

सातवाँ परिच्छेद

कोंडाणे का किला

आगामी बातों का वर्णन करने से पहले पाठकों को इस गढ़ की रचना आदि से विदित कर देना यहां उचित होगा जिससे कि वर्णित की जाने वाली घटनाएं कहाँ हुईं, यह अच्छी तरह समझ में आ सके।

यह गढ़ पूना से लगभग सात कोस दक्षिण-पश्चिम दिशा में है। जिस पर्वत-श्रेणी का नाम सिंहगढ़ या भुलेश्वर है उसी श्रेणी के एक अत्युच्च शिखर पर यह बसा हुआ है। दक्षिण तथा उत्तर की दिशा में यह किला मानो एक अखण्ड चट्टान ही है जहाँ से इसके ऊपर तोप लगाना या हमला करना बिलकुल असंभव है। यह गढ़ कब और किसने बनवाया था इसका कुछ पता नहीं है। किन्तु इसके नाम से तथा दन्तकथा से यह अनुमान किया जा सकता है कि जिस समय भारतवर्ष में मुसलमानों का बिलकुल भी प्रवेश नहीं हुआ था तथा जब कि प्रदेश, गढ़ नगर आदि को संस्कृत नाम देने का ही रिवाज था तभी से इस गढ़ का कौंडिण्य नाम चला आता होगा।

पासके ग्रामीण लोग कहते हैं कि यह कौंडिन्य अथवा शृंग ऋषिकी तपश्चर्या का स्थान है। 'कौंडणपुर' के अन्तिम शब्द 'पुर' से हम कह सकते हैं कि प्राचीन 'कोडण' शब्द मुसलमानी नहीं है। 'कौंडणपुर' का पर्याय 'कुंडिनपुर' या 'कौंडन्यपुर' ही हो सकता है। इसी तरह 'कौंडाणे' का 'कुंडिनगढ़' या 'कौंडिन्यगढ़' हो सकता है। यह गढ़ मुसलमान लोगों ने हरगिज़ नहीं बनाया है। आरम्भ में इसको यादव अथवा शिलाहार अथवा इनके भी पूर्वीय किसी पराक्रमशाली राजा ने बनाया होगा। इतिहास में इस किले का नाम पहले पहल मुहम्मद तुग़लक के कारनामों में सुनाई देता है। इस प्रदेश में कोई धीवर जाति का नागनाइक नाम का राजा राज्य करता था। उसी के अधिकार में यह गढ़ था। जब मुहम्मद तुग़लग ने इस देश पर चढ़ाई की तो उसने इस राजा को खूब सताया। दूसरा उपाय न देख राजा ने अपनी सेना के साथ गढ़ का आश्रय लिया। परन्तु शस्त्रास्त्र की सहायता से गढ़ पर अधिकार करना नितान्त कठिन था और मुहम्मद तुग़लक को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। आठ महिने तक उसने उस क़िले को घेरे रखा और अन्त में जब क़िले में खाने को कोई सामान न बचा तो राजा ने क़िले को छोड़ दिया।

इतिहास में आगे लिखा है कि अहमद नगर के संस्थापक मलिक अहमद के अधिकार में यह गढ़ था। अहमद नगर की अधीनता में शहाजी राजा के अधिकार में भी यह क़िला रहा। जब कि जीजाबाई क़ैद से मुक्त हुई थी तो वह इसी कौंडाणे क़िले में रहती थीं। जब बीजापुर के राजा ने हैरान किया था तो शहाजी

राजा को एक बार इसी गढ़ का आश्रय लेना पड़ा था और बाद में जब वह बीजापुर के बादशाह के मातहत हुये तो इस किले के मालिक बीजापुर वाले हो गये। यही गढ़ था कि जो तमाम पूना प्रान्त की रक्षा करने के लिए समर्थ था इसीलिए इस गढ़ के ऊपर सबकी नजर रहती थी।

शिवाजी महाराज ने स्वराज्य-स्थापन का आरम्भ तोरणा गढ़ से किया। तोरणा गढ़ के बाद, इसका महत्व जानकर उन्होंने कोंडाणागढ़ भी ले लिया। इस प्रकार स्वराज्य के संस्थापन कार्य का उपक्रम शुरू हुआ। बहुत वर्षों तक यह गढ़ महाराज के ही कब्जे में रहा। जिस समय शाइस्ताखां ने पूना में आकर ऊधम मचाना आरम्भ किया था तो उसे परास्त करने का प्रबन्ध इसी गढ़ पर किया गया था उसका वृत्तान्त यहां देना अनुचित न होगा।

करने और मरहठों को सजा देने के लिए शाहस्तखाँ ने सेना भेजी। परन्तु मरहठों के सामने सेना की कुछ न चल सकी। ज्योंही सैनिक लोग विफल होकर वापिस आए त्योंही मावलों ने जो बीच में ही छिप कर बैठ गए थे उनके ऊपर हमला कर दिया और उनकी बुरी दशा की। तब से इस क़िले पर किसी की नज़र न जाती थी। ईसवी सन १६६४ में सूरत लूटने के बाद जब महाराज ने शहाजी का मृत्यु समाचार सुना तो शोक से व्याप्त होकर वह यहीं रहे और उन्होंने शहाजी महाराज की उत्तर क्रिया इसी गढ़ पर की।

तदनन्तर १६६५ ई० में, जयसिंह ने बड़ी चालाकी से इस गढ़ पर अधिकार किया और अपने लोग वहाँ रक्खे। इसके बाद औरंगज़ेब ने शिवाजी को राजा का खिताब दिया और उनसे सुलह की। उसके अनुसार सब गढ़ शिवाजी को लौटा दिये गये परन्तु 'कोंडाणे' और 'पुरन्दर' नहीं वापिस किए गए क्योंकि यह क़िले उस प्रदेश के मानों नाक थे। गढ़ को हाथ से जाते देख महाराज को बड़ा खेद हुआ। वह चाहते थे कि किसी प्रकार ये गढ़ लेलें। किन्तु औरंगजेब से जो सुलह हुई थी उसकी शर्तें तोड़ने का कोई योग्य कारण अभी तक नहीं मिला था; और इसी लिए महाराज रुके हुए थे। इस समय उदयभानु का आगमन और उसके बारे में जो खबर मिली थी सो अच्छा कारण था। कोंडाणे फिर से ले लेना मानों मुग़लों की नाक काट लेना ही था और इसीलिए तानाजी की योजना इस कार्य पर की गई। महाराज तो चाहते थे कि यह कार्य खुद ही करें परन्तु तानाजी ने नहीं

माना। उसने प्रतिज्ञा की कि दस बारह रोज के भीतर ही मैं खुद गढ़ ले लूँगा, पर साथ में यह भी शर्त रक्खी कि महाराज उस स्थान से न हिलें। महाराज को हर्ष हुआ क्योंकि महाराज को विश्वास था कि तानाजी अपनी प्रतिज्ञा को जरूर ही पूरी कर लेगा।

कोंडाणा एक विशाल किला है। समुद्र की सतह से वह ३३०० फीट और पूना से कहीं २३००, कहीं २५०० फीट ऊँचा है। उस पर चढ़ने के लिए सुगम मार्ग नहीं है—बल्कि कहना चाहिये कि मार्ग ही नहीं है। इस समय इसके दो दरवाजे दिखाई देते हैं, परन्तु सुनते हैं कि पूर्व काल में इसमें एक दरवाजा और था।

इनमें से एक 'पूना दरवाजा' कहलाता है और इस दरवाजे से होकर पूना से आने वाले लोग गढ़ पर चढ़ते हैं। दूसरा 'कल्याण दरवाजा' है जो कल्याण शहर की तरफ है। ये दोनों आज तक खड़े हैं। किन्तु पहले, 'कुंभार' बुर्ज और 'कलावती' बुर्ज के बीच में जो दर्रा है उसके दक्षिण में, 'कुंभार' बुर्ज की बगल में, एक दूसरा दरवाजा था जिसका निशान तक आज दिखाई नहीं देता।

इस गढ़ की सीमा पर कोली लोग रहते थे। इन्हीं में से एक

ग्रामों के पटेल और सब मुखिया लोगों को बुलाया और एक फर्मान निकाला कि—"कोई अजनबी शख्स, चाहे वह पुरुष हो, स्त्री हो या बच्चा, अगर किसी के घर रहने के लिए आवे तो उसकी ख़बर पहले हमें गढ़ पर दी जाय। मेरे हुक्म के बाद ही वह प्रवेश कर सकेगा और हुक्म के बमूजिब उस शख्स के वापिस जाने पर उसकी इत्तला हमको फिर दी जायगी। जितने रोज़ वह यहाँ रहेगा उतने रोज़ सुबह और शाम उसकी हाजिरी देनी होगी। इस हुक्म के खिलाफ जो कोई जिस किसी को गढ़ के भीतर लावेगा उसे उसके साथ, दोनों को, गढ़ के ऊपर से नीचे के दर्रे में फेंक दिया जायगा।"

इस कठिन आज्ञा को सुन कर सब लोग घबड़ा गए। इस हुक्म का किसी के लिए अपवाद नहीं था। परन्तु उदयभानु के रहने के मकान में तो इसकी व्यवस्था बड़ी ही कड़ी थी। तमाम गढ़ के ऊपर बारह चौकियाँ थीं और प्रत्येक चौकी के ऊपर एक-एक धीवर का पहरा रक्खा गया था। इन पहरेदारों को सख्त हुक्म था कि वे एक पहर में तीन बार गश्त किया करें और अपनी दाहिनी तथा बांई तरफ की चौकियों के पहरेदारों से वचन लिया करें। इस प्रकार तमाम रात उन धीवरों को जागना पड़ता था। परन्तु ये धीवर लोग ही केवल उस गढ़ के रखवाले नहीं थे। गढ़ की दीवार के चारों ओर, लगभग तीन चार गज़ नीचे, बाहर की तरफ भी चार-पाँच हाथ चौड़ी जगह थी। यहाँ पर महार लोगों का पहरा था। सबसे अधिक परिश्रम था और पहरे की जगह भी बड़ी विकट थी।

उदयभानु ने सब को बुला कर ताकीद की और स्वयं तमाम जगहों पर जाकर स्थिति देखी।

जैसा कड़ा बन्दोबस्त बाहर की तरफ किया गया था वैसा ही ऊपर की तरफ भी किया गया।

अभ्यास—

१—भाषातत्व की दृष्टि से 'कोंडणपुर' और 'कोंडाणे' शब्दों की व्याख्या करो।

२—कोंडाणे किले का दूसरा नाम क्या था? यह दूसरा नाम कब पड़ा? कोंडाणेगढ़ के पूर्व इतिहास का साधारण परिचय दो।

३—राजनैतिक दृष्टि से कोंडाणे के किले के महत्व पर प्रकाश डालो

४—महाराज शिवाजी के वंश का तथा उनके स्वराज्यस्थापन के कार्य का इस किले से क्या सम्बन्ध था?

५—गढ़ की स्थिति तथा उसकी ऊँचाई, द्वारों आदि का वर्णन करो।

६—उदयभानु के आने से पहले कोंडाणे की कैसी व्यवस्था थी तथा उदयभानु ने आकर उस व्यवस्था में क्या परिवर्तन किया?

७—परिवर्तन करने में उदयभानु के किस गुप्त उद्देश्य का पता चलता है? उदयभानु के फरमान का सार लिखो।

८—'दन्तकथा' किसे कहते हैं? अपने परिचय की दो एक दन्तकथाओं का उदाहरण देते हुए बतलाओ कि कोंडाणागढ़ के सम्बन्ध में संभवतः किस प्रकार की दन्तकथाएं प्रचलित हो सकती थी।

९—परिच्छेद में आये हुए उर्दू शब्दों का स्वतन्त्र वाक्यों में प्रयोग दिखलाते हुए उनका अर्थ स्पष्ट करो।

१०—निम्नलिखित वाक्यांशों की विशद् व्याख्या करके उनका स्वतन्त्र प्रयोग उद्धृत करो,—

यह किला मानो एक प्रचण्ड चट्टान ही है, उस प्रदेश की मानो नाक थे: मानो नाक काट लेना ही था, इस हुक्म का किसी के लिए अपवाद नहीं था।

आठवाँ परिच्छेद

तोताराम चारण

रायजी संरक्षक के यहाँ लड़की की शादी थी। शादी के लिए लोग इकट्ठे होने वाले थे। उस समय इस प्रान्त में धीवर प्रायः बसे हुए थे। मानों वह गांव ही उन लोगों का था। और रायजी संरक्षक की तो बात ही और थी। वह तो एक प्रकार से अपनी जाति के राजा ही थे। तिस पर भी उनकी बेटी की शादी। वाजिब बात थी कि आसपास के गांवों से लोगों के झुण्ड आते। परन्तु उदयभानु का सख्त हुक्म था कि गढ़ की सीमा के अन्दर कोई मक्खी तक न आने पावे। अर्थात् रायजी उदयभानु से इजाजत लेने गए।

पहले जोश में उदयभानु ने साफ इन्कार कर दिया। रायजी को बहुत खेद हुआ—थोड़ा क्रोध भी हुआ। किन्तु क्रोध से काम न चलेगा, जरा धीरे २ काम लेना चाहिए—यह सोच उन्होंने उदयभानु से कहा, "सरकार! इजाजत देना न देना आपके हाथ में है, मगर हमारे घर शादी है और इस समय अगर मैं अपने जान पहचान वाले लोगों को न बुलाऊंगा तो कैसे काम चलेगा? सम्बन्ध तो पूना वाले लोगों से है—अगर उन्हें गढ़ के भीतर न आने दें तो कार्य कैसे हो सकता है? आपकी इजाजत नहीं होगी तो थोड़ी देर के लिए हम सब धीवर बाहर चले जाएंगे। विवाह-समारम्भ खत्म हो जाने के बाद फिर वापिस आ जाएंगे। तब तक आप अपना पहरा सम्भालिए। इसके सिवाय दूसरा उपाय तो हमें कोई सूझता नहीं।"

रायजी उदयभानु से साफ २ क्रोध के साथ बातचीत नहीं कर सकते थे। पर, उनकी बोली में क्रोध और खेद की झलक थी, यह बात उदयभानु ने जान ली। थोड़ा विचार करने के बाद उसे अनुपात हुआ। वह बोला, "रायजी ! इजाजत देने के लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु सब लोगों की गिनती कैसे रह सकती है ?"

रायजी ने उत्तर दिया, "हाँ सरकार ! झूठ कैसे कहा जाय। गिनती नहीं रह सकती। हमारे लोग तो गिने गिनाए ही हैं, पर, कब कितने और आजाएँगे—यह नहीं कहा जा सकता। हाँ अगर कोई संदेह के लायक व्यक्ति आएगा तो मैं जिम्मेदार हूँ। लेकिन अगर आप किसी को न आने देंगे तो काम ही कैसे चलेगा ? इससे तो हम सब लोगों को छुट्टी देना ही अच्छा है। हमारे घर तो है शादी, फिर—इसको नहीं आना होगा, उसको नहीं आना होगा—यह सब कैसे चल सकता है ?"

रायजी अपनी कीमत को अच्छी तरह समझता था, वह जानता था कि गढ़ के संरक्षक मस्त राजपूतों को हम लोगों की कितनी जरूरत है। इसीलिए रायजी को इतना अकड़ कर बोलने का साहस हुआ और रायजी के अकड़ कर कहने पर भी उदय-भानु क्रुद्ध नहीं हुआ या उसने अपना क्रोध बाहर प्रकट नहीं किया —इसका कारण भी वही था। वह जानता था कि यदि ये लोग छोड़कर चले जाएँगे तो यहाँ बुरी अवस्था होगी और न वह इस बात को विचार में ला सकता था कि इन्हें गढ़ छोड़ जाने की इजाजत दी जाय। विवाह कार्य के लिए लोग अवश्य आएँगे ही।

और उन्हें आने से रोकना असंतोष फैलाना है। यह बात इष्ट नहीं थी। परन्तु रायजी को उत्तर किस तरह दिया जाए—इसकी उदय भानु को चिन्ता होरही थी। अगर रायजी की बात तुरन्त स्वीकार करते हैं तो हमारी प्रतिष्ठा कम होती है और अगर इनकी बात नहीं मानते हैं तो ये लोग छोड़कर चले जाएँगे। रायजी को खुश करने तथा अपनी भी प्रतिष्ठा रखने के लिए वह बोला, "अजी मैं यह थोड़ ही चाहता हूँ कि तुम शादी वगैरा न करो और बिरादरी के लोगों को न बुलाओ। बादशाह के तुम लोग बहुत पुराने नौकर हो। तुमसे इस तरह कौन मना करेगा—तुम्हारा अविश्वास कौन करेगा ? हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने तुमसे कड़े शब्द कहे, मगर तुम जानते हो कि ये दिन ठीक नहीं हैं। वह लुटेरा शिवाजी अवसर ताक रहा है। शायद इसी मौके पर अपने गाफिल रहने का वह फायदा उठाए। रायजी ! अगर तुम जैसे ईमानदार और वफादार लोग किसी गैर आदमी को अन्दर न आने देने की चिन्ता रक्खो तो—बस ! हमको और क्या चाहिए ? मुझे तुमको इस विषय में सचेत करना था। इसलिए मैं इतने आवेश से बोला। शादी जरूर होने दो। तुम्हारे घर की शादी मेरे ही घर की शादी है रायजी ! तुम जैसे हेकड़ीबाज लोगों को जरा चिढ़ाने में मज़ा आता है। वरना ऐसा कहीं हुआ है कि अपने पुश्तैनी नौकर के घर तो शादी हो और उसकी बिरादरी को आने से रोका जाय। जितने आदमी बुलाने की इच्छा हो उतने बुलाओ—उन्हें आने दो, जाने दो—मेरा कोई एतराज नहीं है, परन्तु इतना ध्यान रखना कि कोई शत्रु का जासूस न आने पावे। बस, इतना ही

खयाल रखना—और ज्यादा मैं क्या चाहता हूँ ?"

रायजी कच्चे गुरु का चेला नहीं था। उसने जान लिया कि मेरे रूखेपन और अकड़ की वजह से ही इन महाशय ने यह लम्बा चौड़ा और मीठा व्याख्यान दिया है। वह बोला, "हम यहाँ खानदानी और पुश्तैनी नौकर तो जरूर हैं परन्तु जब आप हमें उस तरह मानेंगे और हमारा विश्वास करेंगे तभी तो उसका फायदा है। आप पहरे वालों और किलेदारों को देखिए। वे हमारे ऊपर विश्वास रखकर रात को गहरी नींद सोया करते थे। पर किसी की भी ताकत नहीं थी कि इस किले के ऊपर टेढ़ी नजर करे। अगर कोई आ भी जाए तो हम नीचे के नीचे ही उसका समाचार लेते हैं। मुझे दिन बहुत नहीं लगेंगे-अधिक से अधिक शिवरात्रि तक। शिवरात्रि के बाद फिर वैसी ही कड़ी व्यवस्था रक्खी जायगी और सब लोगों की हाजिरी दिलाई जाकर आपको निश्चित किया जाएगा। पर सरकार आज यदि आप छुट्टी न देंगे तो हमारा रह ही क्या गया ? हमारी बिरादरी पर हमारा रौब कैसे रहेगा ? आप के नौकर कहला कर हम छाती ऊँची करके घूमते हैं—अब इस अवसर पर यदि हमें अपने इष्ट मित्रों तक को बुलाने का अधिकार नहीं तो हम कोई भी चीज न रहे। इसीलिए मैंने आपसे यह प्रार्थना की थी। आपने कृपा करके हमें इजाजत दे दी—अब हमारा उत्साह भी दुगुना होगया है।

रायजी के इस भाषण से उदयभानु खुश हुआ। उसने उनसे बड़ी होशियारी से रहने के लिए कहा और नजदीक के गांव के अधिकारी-वर्ग को लिख भेजा कि—"शिवरात्रि तक रायजी के

घर जो कोई आए उसे इजाजत दी जाए—रोका न जाय। यह हुक्म रायजी ने अपनी चौकी पर आते ही तमाम अधिकारी-वर्ग के पास भेज दिया। इस प्रकार रायजी के इष्ट मित्रों के आने में किसी प्रकार की रुकावट नहीं रही।

गढ़ के संरक्षक के यहाँ शादी थी—उसका पूछना ही क्या था। इधर-उधर से लोग इकट्ठे होने लगे और विवाह समारम्भ भोजन आदि शुरू होने लगे।

इन मछुए लोगोंमें अनेक कुलों के आचार-विचार रीति-रिवाज होते थे और अनेकों देवताओं के प्रीत्यर्थ अनेक प्रकार केसमारम्भ हुआ करते थे। रायजी दिलदार खर्चीला मनुष्य था—उसे खर्च की परवाह नहीं थी। वह केवल चाहता था कि किसी प्रकार की कमी न रहे। पानी के समान पैसा खर्च होने लगा। इस विवाह-समारम्भ का यहाँ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। केवल एक खास घटना कहनी है।

रायजी का सम्बन्धी दौलतराव पूना का रहनेवाला था। उसने रायजी से कहा, "आपने जैसा विवाह-समारम्भ किया वह बहुत ही बढ़िया हुआ। परन्तु अपने कुल के आचार के अनुसार गाने वाला जो बुलाओगे वह हमारी मारफ़त बुलाना। हमारा चारण बहुत ही लायक आदमी है। उसका गाना सुन लोगे तो उसे सदा के लिए ही रख लेने की तुम्हारी इच्छा होगी।"

रायजी को अपने गवैयों का अभिमान था। वह भला इस बात को कैसे मानता। अन्त में यह निर्णय हुआ कि दोनों गवैयों का गाना सुने बिना [illegible] होना चाहिए। इसी विषय [illegible] जब चर्चा हो

रही थी, रायजी का एक रिश्तेदार धीरे से बोला, "रायजी! गवैया तो ऐसा होना चाहिये जैसा कि तुलसी था। तुम्हें याद है, हम लोग कौंडणपुर की यात्रा के लिए गये थे। वहां एक पेड़ के तले एक गवैया बैठा था। जब वह गाने लगा तो देव दर्शन करना छोड़ सब लोग वहीं जमा होगए—देवालय में कोई भी नहीं रहा था। बस; वैसा ही गवैया होना चाहिए; दूसरा किसी काम का नहीं।"

दौलतराव एक दम बीच में बोल उठे, 'अजी, बात तो सोलह आने कही! मैं जिस गवैये की तारीफ करता हूँ वह इस तुलसी का सगा भाई था-वह भी तो इसी का साथी था। चार महिने हुए होंगे, तुलसी का कहीं पता नहीं है। पर यह उसका भाई तोताराम, उससे भी बढकर है। इसको उसी तुलसी ने, इसके भाई ने ही, शिक्षा दी है। तुम इसे ही निमंत्रण दो। तुलसी होता तो उसको बुलाये विना न रहते। पर वह है कहां-उसका तो पता ही नहीं। अजी तुम संदेह बिलकुल मत करो। हम भी तोताराम को बुलाने का ही इरादा कर रहे थे। परन्तु आपकी राय बिना ऐसा करना ठीक नहीं समझा।"

"वाह! आप उसे अपने साथ क्यों नहीं लेते आए? अगर लाये होते तो बैठ कर पाँच छे रोज उसका गाना सुनते। विवाह मंडली का दिल—बहलाव ही होता।"

"तो अब क्या हुआ! अब भी उसका गाना सुनकर चार पांच रोज उसे यहीं रख सकते हो? वह तो अपना ही आदमी है। कहने से बाहर थोड़े ही जाएगा।" . . . .

इस प्रकार तोताराम चारण का ही गाना कराना निश्चित हुआ। उस समय तुलसीदास और अज्ञानदास, यह दो चारण, बहुत प्रख्यात थे। जब किसी बड़े घर वाले के यहां गाना हुआ करता तो इनमें से ही किसी एक को बुलवाया जाता। इनमें भी तुलसीदास प्राचीन वीरता के गीत गाने में प्रवीण था। तुलसीदास के न रहने से लोगों ने खेद मनाया। पर, उसका भाई गाने में उससे आगे बढने की कौशीश करने लगा और जो लोग तुलसीदास को जानते थे उनके यहां जाना-आना शुरू किया। वैसे तो, नया होने के कारण बहुत ही थोड़े लोग उसे जानते थे। जिस समय उसने सुना कि दौलत राव के घर शादी है और वे बारात लेकर 'कोंडाणे' जा रहे हैं, तो वह उनके पास पहुंचा और उनके साथ चलने के लिए आग्रह करने लगा।

रावजी ने जब दौलतराव का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो दौलतराव ने अपने एक आदमी को तोताराम और उसके साथियों को बुलाने के लिए भेजा, तोताराम आया। किसी बात की कमी नहीं रही थी। केवल गाना ही होने को रहा था। नजदीक के गांव वालों ने जब सुना कि रावजी और दौलतराव ने एक प्रसिद्ध चारण को बुलाया है तो उस रात को बड़ी भीड़ हुई। दूर दूर से सुनने वालों की टोलियां आई। गवैया बड़ा प्रवीण था। उसके साथियों ने साज संभाला। गायक ने पहाड़ी बोली में ईशस्तवन शुरु किया। किन्तु पहले पहल उसमें कोई रस न आया। इसी प्रकार तीन चार चीजें गाई गई। अन्त में उसने खड़ी आवाज में एक ऐतिहासिक कवित्त, जिसके लिए तोताराम मशहूर

था, शुरू किया। पहले ही आलाप ने सब का चित्त आकर्षित कर लिया। उसकी आवाज इतनी ऊँची थी कि दूर कोने में बैठे हुए मनुष्य भी उसे सुन सकते थे। धीरे धीरे वह आवाज उस तमाम प्रदेश में गूंजने लगी। श्रोतागण तल्लीन होकर सुनने लगे।

अभ्यास—

१—रायजी की आस पास में कैसी प्रतिष्ठा थी इसका कुछ बयान करो।

२—रायजी और उदयभानु की बातचीत के भीतर दोनों की नीतिज्ञता की क्या चालें चल रही थीं तथा उससे एक दूसरे के प्रति दोनों के किस भाव का प्रकाश होता है—इसे समझकर लिखो यह भी बताओ कि इस बात चीत से दोनों में किसकी नीतिज्ञता अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होती है।

३—परिच्छेद में आये हुए उर्दू शब्दों के हिन्दी अर्थ लिखो और उर्दू शब्द तथा हिन्दी अर्थ दोनों का स्वतन्त्र व्यवहार कर के दिखाओ।

—०—

नवाँ परिच्छेद

धिक्कार है उनकी जिन्दगी पर

सकल श्रोतागणों को पूर्ण सावधानता से गाना सुनते देखकर तोताराम ने एक ऐतिहासिक गाना आरम्भ किया। उसका सारांश इस प्रकार है—

जय बोलो माता भवानी की। वह भक्तों के लिए दौड़ आती है। उस शिव शंकर का प्रणाम है कि जिसने अनेक अवतार लिए हैं,—जिसने असंख्य असुरों को मारकर देवों का भार दूर किया है। दैत्यों ने धरित्री को सताया पर उसने अनेक क्रूरों का मिर्दलन किया। क्या वह हमें भूल जाएगा? उसकी स्तुति करेंगे, ध

फिर दौड़ कर आयेगा। उसने भस्मासुर को मारा, उसने त्रिपुर को मारा, उसने जटासुर को मारा, उसने असंख्य असुरों को मारा है। वह दया का सागर है। उसकी जय बोलो। असुरों ने उत्पात मचा रखा है। धर्म का संहार हो रहा है। जय बोलो माता भवानी की।

इस कलियुग में राक्षस मुग़लों के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। वे गो—ब्राह्मणों का नाश करते हैं। दीन अनाथों को कष्ट देते हैं। पतिव्रता का अपमान करते हैं। घरों की स्त्रियों को खींच ले जाते हैं और हम लोग आँखों से देखते ही रह जाते हैं। वे गऊ को काटते हैं—उसका लहू पीते हैं। क्या भवानी माता यह सब सह सकती है? क्या गिरिजापति यह सह सकते हैं? भवानी अपने पति से कहती है—जाओ, पृथ्वी के ऊपर अवतार लो। तुरन्त जाकर धरित्री को मुक्त करो। यहां बैठे क्या करते हो? धर्म का नाश हो रहा है। पतिव्रताएँ प्राण दे रही हैं। क्यों आंखें बन्द किए हुए हो? अब भी करुणा आने दो। आँखें बन्द न करो। जय बोलो माता भवानी की।

माताजी के ये शब्द सुनकर भोले शंकर जाग उठे। कहो, कहां अवतार लूँ। दुष्टों का संहार करूंगा। भवानी फिर शंकर से बोली—'शिवनेर' गढ़ जाओ। वहां मेरी एक भक्तिन है। वह भोंसले कुल की है—उसका नाम 'जीजा' है। उसके गर्भ में अवतार लो। दुष्टों का संहार करो। शिव ने त्रिशूल लिया। शिव ने अंकुश लिया। जोर से डमरू बजाया। अपने गणों को बुलाया। शिवजी उनसे बोले—चलो, चलो, दुष्टों का मर्दन करें। मैं शिवाजी

बनूंगा। तुम मावले लोग बनो। चलो अब तुरन्त चलो। पृथ्वी के ऊपर अवतार लें। जय बोलो माता भवानी की !

शिवनेर गढ़ का सौभाग्य क्या कहूँ ! शिवजी जीजाबाई के पुत्र हुए। मावले लोगों का सौभाग्य क्या कहूँ ! शिवगण मावलों के पुत्र हुए। वैसे ही कोंकण का वह प्रदेश भी भाग्यवान हुआ जहाँ कि शिवगणों ने जन्म लिया। वैशाख शुक्ला पञ्चमी का सुदिन था। शाके एक कम पंद्रह सौ पचास का वर्ष था। संवत्सर नाम 'प्रभव' था। सूर्यनारायण उदय हुए थे। जीजाबाई का पेट दर्द करने लगा ! वह पृथ्वी के ऊपर लोटने लगी। परन्तु मुँह से क्या कहती हैं ? - दैत्यों का जंगल काट डालूँगा, हाथ में तलवार लेकर। दुष्टों के मुँडों का ढेर लगा दूंगा। सूर्यनारायण आकाश के मध्य में आगए थे। गिरिजारमण ने अवतार लिया। समस्त गढ़ पर प्रकाश छा रहा था जब कि शिव बालक ने जन्म लिया। जय बोलो माता भवानी की।

बालक दिन दिन बढ़ने लगा। जीजाबाई को आनन्द देता रहता। गुरु 'दादोजी' कौतुक मनाते थे, क्योंकि वह जनता में हीरा था। बालक तीन वर्ष का हुआ। सारे गढ़ के ऊपर दौड़ा करता। जीजाबाई से तलवार माँगता और कहता मैं लड़ाई का खेल खेलूँगा बालक पाँच वर्ष का हुआ। वह कैसे कैसे खेल खेलता ! अपने साथियों को इकट्ठा करता। कहता—बीजापुर के ऊपर चढ़ाई करें। मैं तुम्हारा राजा बनूंगा। तुम सब मेरी प्रजा बनो। दुष्टों को पकड़ लाओ। उनकी गर्दन मरोड़ देंगे। मैं गौ-ब्राह्मण का प्रतिपालन करूँगा। मैं मुगलों को काटूँगा। वह ऐसे ऐसे खेल

खेलता। माताके मनको संतोष हुआ। जय बोलो माता भवानी की।

बालक दस वर्ष का हुआ। राजा उसे बीजापुर ले गये। राजा शाहजी बालक से कहते– चलो, बादशाह के दरबार में चलो। बालक बोला महाराज, दरबार को चलेंगे। परन्तु बादशाह को कोर्निस नहीं करेंगे। केवल देवता को प्रणाम करेंगे। केवल माता पिता को प्रणाम करेंगे। केवल गुरु को प्रणाम करेंगे। पर मुगलों को नहीं। पुत्र के वचन सुनकर महाराज बहुत बिगड़े। जबरदस्ती साथ ले गए। बादशाह के पास खड़ा किया। पर उसने सिर नहीं झुकाया। उसने हाथ नहीं उठाया। अभिमान से बादशाह को देखा। सब लोग ताकने लगे। बादशाह ने कहा—बालक कोर्निस करो। बालक ने कहा—प्रणाम परमेश्वर को करेंगे। तुम्हारे सामने क्यों झुकें। झुकना केवल ईश्वर के सामने! मैं दरबार से जाता हूँ। महाराज, आप पीछे से आना। मैं यहां नहीं बैठ सकता। माताजी बिना मुझे चैन नहीं पड़ता। जय बोलो माता भवानी की।

इतना कहकर बालक निकला। रास्ते में उसने क्या देखा? एक ब्राह्मण को दान में एक गाय और बच्चा मिला था। वह बड़े हर्ष से उसे ले जाता था। रास्ते में एक कसाई की दुकान पड़ी। गौ को देख कसाई ने ब्राह्मण को रोका। बोला-मुझे यह गौ देदे। ब्राह्मण चिल्लाने लगा। कसाई छुरा लेकर दौड़ा। गौ भाग गई किन्तु उसने बच्चे को पकड़ लिया। ब्राह्मण दीनता से हाथ जोड़ कर बोला—मैं विनती करता हूँ, माता से बच्चे को अलग न कर। कसाई हंसकर बोला—ऐसे बहुत से बम्हने देखे हैं। इस बछड़े को तुम्हारे सामने काटेंगे और इसके लोहू से तुम्हारा मुंह

भर देंगे। उसने बछड़े को पकड़ कर धरती पर गिरा दिया और मारने के लिए हाथ ऊंचा किया। जय बोलो माता भवानी की।

तो सुनो क्या आश्चर्य हुआ। उसका हाथ टूट गया। पीछे एक दस वर्ष का बालक तलवार उठाए था। यह देख लोग विस्मित हुए। उसकी ओर खड़े २ ताकने लगे। उसने ब्राह्मण को एक मोहर दी और बछड़े को निर्भयता से घर ले जाने को कहा। इतना कह कर बालक पालकी में चढ़ा! लोग निश्चल दृष्टि से देखते रहे। बालक ने उसी दिन निश्चय किया कि मैं बीजापुर में नहीं रहूँगा। राजा शाहजी से कहा-मुझे पूना भेज दो। बालक का यह निश्चय देख राजा शाहजी क्रुद्ध हुए। बालक ने खाना पीना छोड़ दिया। तब उसे पूना भेज दिया। उस दिन से वह चिन्ता करने लगा कि गौ माता की कैसे रक्षा होगी? बचपन के साथी इकट्ठे कर गौ-ब्राह्मण की रक्षा करूँगा। मुग़लों ने देश बे-चिराग़ कर दिया है। उन्हें मैं कच परस्त करूँगा! कोंकण के हेटकरी लोग मिलाए। उन्हें युद्ध-कला सिखाई। इसी प्रकार मावल देश के मावले इकट्ठे किए। उन्हें शूर सिपाही बनाया। जय बोलो माता भवानी की!

सेना को साथ लिया। 'तोरण'— -गढ़ पर अधिकार किया और मरहठों का झंडा खड़ा किया। एक दूसरा गढ़ था 'चाकण'। इसे लेने का इरादा किया। उसका रक्षक 'फिरंगोजी' बड़ा शूरवीर था। उसे शिवाजी ने क्या कहला भेजा? सुनो-जो गौ-ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए, स्वराज्य-स्थापना करने के लिए मेरे निकट हों; आएँगे वे मेरे भाई हैं। और जो मुग़लों के नौकर

हैं उनकी जिन्दगी पर धिक्कार है। तुम फिरंगोजी, शूर मर्द हो। तुम्हारा अभिमान कहाँ है ? किस की सेवा तुम कर रहे हो ? थोड़ा इसका विचार तो करो। गौ अपनी माता है। इसकी गर्दन मुग़ल काटते हैं। तुम्हारी वीर श्री कहाँ है ? तुम उन दुष्टों की सेवा करते हो। क्या तुम्हारी लज्जा कहीं भाग गई है ? तुम्हारी जिन्दगी के ऊपर धिक्कार है। अपनी माता बहन को सम्भालो। क्या उन्हें भी मुग़लों के हाथ सौंप दोगे ? तुम्हारी शर्म कहाँ गई ? धिक्कार है तुम्हारी ज़िन्दगी पर। अपना घर किन्होंने डुबाया ? कौन मुग़लों को यहाँ लाया ? क्या इस सब पर विचार किया है। धिक्कार है तुम्हारी ज़िन्दगी पर ! शिवाजी ने जब ऐसा कहलाया, फिरंगोजी का मन बदल गया। बोला-महाराज, मैं आजसे आपका दास बना। चाकणगढ़ हाथ आया। फिरंगोजी बंधु हुआ

जैसे जैसे चारण गीत के पद कहने लगा वैसे ही वैसे उसका आवेश बढ़ता गया और, मानों उसी के संसर्ग से प्रत्येक श्रोता की भुजाएँ फड़कने लगी। जिस समय चारण किसी पद पर विशेष ज़ोर लेना चाहता था जब उसका आवेश बढ़ने लगता तो वह तुरन्त कुरता उठा कर अपना हाथ मूछों पर ले जाता। अन्त में जब धिक्कार है तुम्हारी ज़िन्दगी पर, इस चरण को एक के बाद एक एक करके वह आवेश के साथ बार बार गाने लगा तो श्रोताओं के शरीरों में वीरता का ओज छाने लगा। जो लोग पहले आलस्य से टेढ़े-से बैठे हुए थे वे अब संभल कर वीरासन से बैठ गए। ये सब लोग मुगलों की नोकरी करते ज़रूर थे परन्तु किसी के हृदय में मुग़लों के प्रति भक्ति या श्रद्धा नहीं थी। "श्रीशंकरजी

नें प्रत्यक्ष अवतार धारण किया और दुष्ट मुगलों को दण्ड देने के लिए ही उनका प्रयत्न है। अभी तक जितने प्रयत्न किए गए हैं सब इसी के लिए किए गए हैं। केवल गौ, ब्राह्मण तथा अनाथों का कष्ट दूर करने के लिए उनकी तमाम कोशिश है। अतएव, ऐसे पुरुष को इस कार्य में जो सहायता न करेंगे बल्कि जो उलटा छल करने वालों की सहायता करेंगे वे कृतघ्न हैं। उनकी जिन्दगी पर धिक्कार है।" इस आशय के पद कहते हुए तोताराम को जोश आगया। वह उठ खड़ा हुआ। दोनों हाथ ऊँचे किए हुए और चक्कर लगाकर उसने दोनों हाथ उनकी ओर फैलाए, मानों उनसे कहता था–जैसे शिवाजी महाराज ने फिरंगोजी से कहा था वैसे ही मैं भी तुमसे कहता हूँ। क्या तुम्हें शर्म नहीं मालूम होती? अगर शर्म न मालूम होती हो तो तुम्हारी जिन्दगी पर धिक्कार है।" चारण के इस तरह के भाव से सब के अन्तःकरण हिल गए। कविता कैसी भी हो, यदि गाने वाला अपना हृदय उसमें मिलादे तो सुनने वालों को अपने वश में कर सकता है—इसका प्रत्यक्ष अनुभव उन लोगों ने वहाँ पर पाया। पहले इधर उधर शान्ति थी। अब हर एक तोताराम की ओर ताकने लगा। थोड़े ही समय में शान्ति के स्थान में कानाफूसी होने लगी। रायजी को तो सुध बुध न थी। दौलतराव की भी वही अवस्था थी। उसने चारण को कुछ इसारा किया और चारण यह कह कर कि 'मुझसे अब गाया नहीं जाता' चुप होकर बैठ गया। लोग भी धीरे धीरे जाने लगे परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के हृदय के ऊपर विलक्षण प्रभाव था। हरेक यही सोचता था कि हम ज

मुग़लों की सेवा करते हैं सो अच्छा नहीं है। तोताराम ने हमारी ज़िन्दगी को धिक्कारा सो उचित ही किया। हमें स्वयम् ही अपनी ज़िन्दगी को धिक्कारना चाहिए। इस प्रकार मन में तर्क करते और आत्म निन्दा करते हुए तथा 'अब आगे क्या करना चाहिए' यह सोचते हुए लोग अपने अपने स्थानों को गए।

रायजी के ऊपर इस गाने का अद्भुत प्रभाव हुआ। उसने सोचा कि अवश्य यह मनुष्य कोई सचमुच का चारण नहीं है, बल्कि शिवाजी महाराज का ही आश्रित कोई वीर पुरुष है। इस बात का निश्चय करने की उसे इच्छा हुई। जब तमाम भीड़ चली गई तो वह तोताराम को अलग ले गया और बहुत धीरे से बोला—"तोताराम, तुम चारण नहीं मालूम होते हो। चारण के वेश में तुम दूसरे कोई हो। मुझ से छिपाये रहकर अब काम न चलेगा। साफ साफ बतलादो।"

तोताराम मानो इस अवसर की ताक ही था। उसने निश्चय किया था कि रायजी के पूछते ही वह उसकी मुग़लों की सेवा की खूब निन्दा करेगा और यदि हो सका तो कुछ झगड़ा भी कर लेगा। इसी के लिए उसने इतना कष्ट उठाया था। जिस प्रकार कोई मनुष्य प्रयत्न द्वारा इष्ट अवसर पाते ही इष्ट फल की प्राप्ति कर लेता है ठीक उसी प्रकार उस गवैये का व्यवहार दिखाई पड़ा। रायजी एकान्त में यह प्रश्न पूछते ही वह एकदम बोल उठा—"रायजी, इस बात को तुम से छिपाए रखने का यदि मेरा इरादा होता तो मैं इतना झंझट ही न करता। मैं तुमसे साफ़ साफ़ कहता हूँ कि मैं तुलसीदास का भाई तोताराम नहीं हूँ।

मैं शिवाजी महाराज का सेवक हूँ। मुझे अपनी इस नौकरी का अभिमान है। मुझे "तानाजी" कहते हैं और मैं तुमसे मिलने के लिए ही आया हूँ। सीधे तुमसे मिलने की अपेक्षा अन्य सब लोगों को भी जागृत कर फिर तुमसे मिलना ठीक होगा, यह विचार करके ही मैंने यह भेष धारण किया। मैंने तुम्हें जगाया है-अपना कर्तव्य किया है-अब जो तुम्हे उचित मालूम हो सो कर सकते हो।"

"तानाजी"-यह नाम सुनते ही रायजी की आंखें खुल गई मानों वह सोच रहा था कि मै जागृत अवस्था में हूँ या स्वप्न में। लगभग पांच मिनट के बाद उसने तानाजी से धीरे से कहा— तानाजी तुम्हारा साहस बड़ा जबरदस्त है। मानलो कि मेरी जगह यदि मैं न होकर, मुगलों का पूरा सेवक कोई दूसरा मनुष्य होता, तो वह तुम्हे तुरन्त क़िले में लेजाकर उदयभानु के सामने खड़ा कर देता और फिर किसी बुरी तरह से तुम्हारी जान ले डालता।"

"रायजी" तानाजी ने शान्ति के साथ मुस्करा कर कहा, "स्वामी की आज्ञा का पालन करते समय जान चुराना क्या ठीक है ?"

'हाँ' कभी कभी ऐसा करना पड़ता है।" यह जवाब देकर रायजी तानाजी का उत्तर दिया, "हां कभी कभी—सदा नहीं। यह अवसर विचार करने का न था और मुझे यह विश्वास हो गया था कि आप मुगलों के परम भक्त नहीं हैं।"

"यह कैसे ?" रायजी ने फिर पूछा।

'मनुष्य का स्वभाव पहचानने की कला मुझे बचपन से ही

मालूम है" तानाजी ने उत्तर दिया। वह थोड़ी देर चुप रहा, फिर बाद में बोला,........"आपने इतना मुझसे पूछा और मैंने भी उसका उत्तर दिया। अब आगे क्या करोगे सो कहो। मैं यह निश्चय कर आया हूँ कि साहस करके कार्यसिद्धि कर जाऊँ या प्राण अर्पण करदूं। तरह तरह की युक्तियों से मैं आपके समीप पहुंच सका हूँ। मुगलों की तावेदारी अगर आप चाहते हों तो मुझे कुछ कहना नहीं है मुझे ऊपर लेजावो। और किले पर से नीचे खाई में ढकेलवा दो। अगर तावेदारी नहीं चाहते हो तो गढ़ पर अधिकार करने में मुझे सहायता दो। आपकी सहायता मैं केवल इतनी ही चाहता हूँ कि गढ़ के ऊपर चढ़ने के लिए सुगम मार्ग ढूँढने का हमें अवसर दिया जाय. और यदि इधर की ओर तथा दूसरी ओर से दो चार सौ आदमी गुप्त रूप से आवें तो उनकी सूचना ऊपर न पहुँचने पावे। इसके उपरांत लड़ने का काम हम स्वयं ही कर सकते हैं। बस, रायजी, अब अपने मन का निश्चय कहो-महाराज को सहायता देकर हिन्दू धर्म की रक्षा में भाग लो या मुझे गिरफ्तार करके ऊपर ले चलो। अधिक बात-चीत से कोई लाभ नहीं।"

तानाजी के ये शब्द सुनकर रायजी कुछ देर चुप रहा। तदनन्तर उसने कहा, "ठीक है। तुम्हें सहायता देता हूँ जब महाराज ने यह गढ़ मुगलों को सौंपा था तो हमें बड़ा दुख हुआ था। पर, महाराज को उस समय दूसरा उपाय ही न होगा। तानाजी तुम्हारा साहस बड़ा जबरदस्त है। इतने जन समाज में तुमने गाना गाया और बड़े आवेश के साथ तुमने सब की जिंदगी

को धिक्कार दिया, इससे बढ़ कर शूरता की और कौन सी बात हो सकती है ? इस प्रदेश के तमाम मछुवे लोग और ऊपर के महार लोग तुम्हारे अनुकूल हैं, ऐसा तुम समझ लो। यहाँ एकत्रित हुए लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अनुकूल विचार का ही होगा। उसको बस कहने भर की ही देर है कि वह तुरन्त आज्ञा पालन करेगा। कोई पन्द्रह दिन बीते होंगे कि मैं महार लोगों के मुखिया से मिला था। उस समय हम यही कह रहे थे कि महाराज का मुगलों को कोंकणगढ़ देना ठीक नहीं है। उसे तुमसे मिलाने के लिये बुलवाता हूँ और तब हम लोग निश्चित करेंगे कि अब आगे क्या करना चाहिये। इसके अतिरिक्त दौलतजी की सम्मति भी लेंगे जिनकी सहायता से कि तुम यहाँ तक पहुँचे हो।"

यह सुन कर तानाजी मुस्करा कर बोले, "वह तो हमारे अनुकूल हैं। मैं कौन हूँ इसे वह जानते हैं और वही मुझे यहाँ लाए हैं। वह हमारे बचपन के पूना के स्नेही हैं।"

अभ्यास।

१—तानाजी [illegible] का वास्तविक परिचय देते हुए समझाओ कि गढ़ों के यहाँ जाने के लिए वह किस प्रकार आया ?

२—युवक को 'भोले' क्यों कहा गया है ? उसके '[illegible]' से क्या अभिप्राय है ?

३—शिवाजी के उस समय की परिस्थितियों का वर्णन करो।

४—तानाजी के जीवन के भाग को कहानी के रूप में अपनी भाषा में लिखो।

५-तोताराम के गायन का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ा ? प्रभाव पड़ने का क्या कारण था ?

६-निम्नलिखित शब्दों और वाक्यांशों का अभिप्राय अच्छी तरह समझाते हुए उनका प्रयोग अपने वाक्यों में करके दिखाओ। इसी तरह उर्दू शब्द भी ढूँढ़ कर प्रयुक्त करो—

कोर्निस, देश बे-चिराग कर दिया है, उन्हें कब पस्त करूँगा, उसी के संसर्ग से प्रत्येक श्रोता की भुजाएँ फड़कने लगी, वीरता का ओज छाने लगा, सबके अन्तः करण हिल गये, यदि गाने वाला अपना हृदय उसमें मिला दे।

—:*:—

दसवाँ परिच्छेद

जगतसिंह

माह बदि पंचमी की आधी रात के समय 'झुंझार' बुर्ज के ऊपर एक राजपूत सिपाही पहरा देता हुआ घूम रहा था। उसके दूसरे साथी गाढ़ी निद्रा में पड़े थे। राजपूत और मुसलमान सिपाही ऐसा ही किया करते थे। आपस में से एक दो को बारी बारी से जागृत रखते और बाकी सोया करते। यही उनका नित्य-क्रम था। यथार्थ में सभी सोते— यह एक दो सिपाही जो जागने के लिए छोड़ दिए जाते, उसका कारण यही था कि यदि किसी समय उदयभानु जाँच करने के लिये आजाए तो उसकी आहट पाकर वे शेष सिपाहियों को जगा दे। उन राजपूत सिपाहियों का विश्वास था कि यह सुदृढ किला सर्वथा दुर्गम और अभेद्य है। और इसलिए वहाँ पहरा रखना अधिक आवश्यक नहीं है।

केवल उदयभानु का संशय मिटाने के लिये ही उन लोगों ने क्रम क्रम से सोते-जागते रहने की तरकीब सोची थी। उदयभानु नीचे पहरा देने वाले मछुवे लोगों तथा मल्लार लोगों के ऊपर बड़ी-बड़ी नजर रखता था, परन्तु ऊपर के लोगों पर उसका कुछ दबाव न था। जो लोग पहले से वहाँ मौजूद थे वे उसका सम्मान न करते थे। अपना धर्माचरण करती हुई किसी बड़े कुल की एक पतिव्रता स्त्री को उसने भगाया था, इसलिये सब उससे नाराज थे।

अतः अपने अधिकार का उसके लिये कुछ उपयोग न था और वह उन सिपाहियों से डरता रहता था। परन्तु वह अपने भय को प्रकट नहीं करता था बल्कि बार बार यही कहा करता कि यदि जरूरत पड़ी तो मैं दण्ड दिए बिना न रहूँगा। सिपाही भी ऊपर से यही प्रकट करते कि हम अपने काम में मग्न हैं। झुंझार बुर्ज के पहरे पर जो सिपाही नियुक्त थे उनमें प्रायः उपयुक्त सिपाही ही पहरा देता हुआ पाया जाता था। वह कहा करता कि मुझे रातको नींद ही नहीं आती इस लिए मैं ही इस जगह रात को पहरा दिया करूँगा। यह सिपाही दिन के समय कभी सिर ऊँचा न करता और सुस्ती से कहीं लेट जाता। यदि कोई चतुर मनुष्य होता तो अवश्य संदेह करता कि यह किसी कारण से दिन को अपना मुँह छिपाना चाहता है।

कोई उसे चाहता और उसके सहवास की अभिलाषा करता किन्तु उसका परम स्नेही एक विशालदेव नामका व्यक्ति था जिससे वह अपने मन की बातें कहा करता था।

विशालदेव इस समय सोया हुआ था। अकेला जगतसिंह 'झुंझार' बुर्ज तक चक्कर लगा रहा था। बीच में पाँच चौकियाँ थीं किन्तु केवल उसी के विश्वास पर पाँचों चौकियों के लोग चैन मनाते थे। वह हमेशा उनको दिलासा देता रहता था कि अगर उदयभानु आवेगा तो मैं तुम्हें जरूर जगा दूँगा। आज तक अनेक बार उसने इन लोगों की इज्जत सँभाली थी। जगतसिंह के भरोसे ये लोग निश्चित रहते थे!

जगतसिंह टहलता हुआ बार-बार ठहर जाता, कान लगाकर कभी-कभी कुछ सुनता और फिर घूमने लगता। एक बार वह किसी स्थान पर जरा ठहरा और निकट जाकर नीचे को देखने लगा, पर उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। फिर उसने धीरे से चुटकी बजाई और नीचे से उसे प्रत्युत्तर भी मिल गया और उसने फिर नीचे को देखा। बाद में अपनी जेब से एक बड़ी सी कील निकाल कर उसने उसे गढ़ की दीवार में ठोक दिया! तब उसने फिर एक चुटकी बजाई और नीचे से एक बड़ी सी रस्सी ऊपर फेंक दी गई। रस्सी को पकड़ कर उसने उसका एक सिरा कील से बांध दिया। रस्सी का दूसरा सिरा नीचे की ओर लटक रहा था। जगतसिंह रस्सी पकड़ कर नीचे उतरने का इरादा कर ही रहा था कि उसे कुछ आहट सुनाई दी। उसने इधर-उधर देखा। तदनन्तर वह फिर नीचे उतरने के लिए तैयार हुआ। दीवार का

ऊपर का सिरा पार कर वह रस्सी के सहारे 'सर' से नीचे जाने लगा कि इतने ही में उसे फिर कुछ आवाज सुनाई दी मानों नीचे के दर्रे में कोई बोल रहा हो। वह सोच ही रहा था कि "यह लोग कौन हो सकते हैं" कि तुरन्त उसके पैर में एक तीर आकर लगा। जगतसिंह ने एक झटका दिया जिससे ऊपर की कील उखड़ गई और वह रस्सी के साथ नीचे गिर पड़ा। गिरते समय "हाय, हाय, मैं कैसे अब उन्हें मुक्त कर सकूंगा" ये शब्द हठात् उसके मुँह से निकल गए। जो लोग दैववादी होते हैं वे सदा कहा करते हैं कि रक्षा करने वाले के आगे मारने वाले का वस नहीं चलता। यही भाव इस समय राजपूत सिपाही का था।

जिस स्थान से जगतसिंह गिरा था यदि वहां से वह सीधा जाकर न पड़ता तो उसके मस्तक के टुकड़े होजाते,परन्तु वहसीधा ही गिरा जिससे वह एक सघन वृक्ष के ऊपर जाकर पड़ा और वृक्ष के नीचे खड़े हुए मनुष्य के सामने लटक रहा। उस वृक्ष के नीचे दो मनुष्य खड़े हुए थे और उन्हीं में से एक ने जगतसिंह के तीर मारा था। ये मनुष्य कौन थे और इस समय वे यहां क्या कर रहे थे, इसका परिचय देकर हम आगे बढ़ेंगे। इनका परिचय मालूम होजाने पर इस राजपूत का वृत्तान्त भी मालूम हो जाएगा।

साथ छोड़ स्वयं अपने मावले वाले लोगों को लाने के लिए चला गया। शेलारमामा के चले जाने के बाद दूसरे ही दिन रायजी ने एक बार किले पर की व्यवस्था देखने के लिए एक चक्कर लगाया और साथ में तानाजी को सब जगह घुमाकर किले के सब पहलू समझाए। उन्होंने जगह २ ठहर २ कर देखा कि किस स्थान से चढ़ने में सुभीता होगा। तदनन्तर उन्होंने इस पर विचार किया कि कमन्द लगाना किस ओर से सुगम होगा तथा एक बार इस की परीक्षा करने का निश्चय किया। जिस रात को उन्होंने इस तरह की परीक्षा का निश्चय किया था उस रात को नियत स्थान पर पहुँचने पर उन्हें सन्देह हुआ कि कुछ दाल में काला है। जिस समय उन्होंने देखा कि कोई आदमी ऊपर से उतरने का प्रयत्न कर रहा है उस समय उनको भय हुआ कि शायद किसी को इसका भेद लग गया हो और वह पकड़ने के लिए नीचे उतरता हो या ऊपर खबर देने के लिए शायद कोई महार चढ़ता हो। रायजी का कहना था कि ऐसे अवसर पर भाग जाना अच्छा नहीं बल्कि उस आदमी को ही शिक्षा देना उचित है। तानाजी कहता था कि ऐसा करने में यदि वह आदमी जख्मी हो गया तो उदयभानु को संदेह होजायगा और तब वह कोई विशेष बन्दोबस्त करेगा जिससे हम लोगों को अवसर मिलना कठिन होगा।

परन्तु रायजी को यह पसन्द नहीं था। उसने कहा,,,तानाजी, तुम क्यों डरते हो ? यह आदमी कोई सिपाही नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह कोई भेदी महार सूचना देने ऊपर जा रहा है। अगर उसे घायल करके गिरा लेंगे तो कोई पूछेगा भी

नहीं, और जो यह ऊपर जाकर हमारी सूचना दे देगा तो बड़ी मुश्किल होगी।" यह कहते कहते उसने एक तीर ऊपर मारा। वह तीर जाकर जगतसिंह के लगा जिससे वह नीचे वृक्ष पर गिर पड़ा और लटकता रहा। पहले तो उन लोगों ने उसे वहीं छोड़ देने का विचार किया। रायजी ने कहा कि, "इसे इसी तरह लटकते देख लोग समझेंगे कि यह ऊपर से गिर पड़ा है और फिर अधिक पूछताछ नहीं करेंगे। इसलिए ऐसे ही चले चलना ठीक होगा।" पर, फिर उसने सोचा कि, "इसके तीर लगा है, अवश्य लोग संदेह करेंगे। अत. इसे चट्टान पर से नीचे ढकेल देना चाहिए।" परन्तु तानाजी इससे सहमत न था। घायल आदमी के ऊपर पुनः चोट करना या उसे वैसे ही मरने देना उसको पसन्द न था। साथ ही उसने यह भी सोचा कि जीवनदान दे देने से इससे ऊपर की व्यवस्था भी मालूम हो सकेगी। अतएव उसे नीचे उतार कर अपनी झोंपड़ी पर ले जाना ही उसे उचित मालूम हुआ।

तानाजी की यह सलाह रायजी ने पसन्द की। उन दोनों ने जगतसिंह को वृक्ष पर से उतारा और वे उसे अपनी झोंपड़ी पर ले गए। जगतसिंह की आयु का तन्तु मजबूत था।

जिस समय तानाजी और रायजी ने जगतसिंह को उठाया उस समय वह बेसुध था। जहां पर उसके पैर में चोट लगी थी वहां से रुधिर टपक रहा था। झोंपड़ी पर पहुँचने के बाद रायजी ने उसके पैर का जख्म किसी पत्ती के रस से भर दिया और उसे कपड़े से बांध दिया। थोड़ी देर में रक्तस्राव बन्द हुआ और

जगतसिंह को चेतना आई। मल्लुवे तथा मावली लोग घाव बांधने की इस क्रिया में बड़े चतुर होते हैं। रायजी और तानाजी भी इस काम में पूरे जानकार थे सैकड़ों बार ऐसे जख्मों का उपचार करना उनके लिए कोई बड़ी बात न थी।

जगतसिंह भी वास्तव में बड़ा वीर था। वह केवल इस जख्म से ही इतना विह्वल न होता क्योंकि सैकड़ों ही बार उसे ऐसे जख्म लगे थे। उसके अचेत होने का और भी कारण था। वह किसी विशेष उद्योग में लगा हुआ था। इसी समय यकायक उसके मर्मस्थान में चोट लगी जिससे कील, रस्सी आदि सब कुछ छूट गई और उसको अनुमान न हो सका कि वह कितनी ऊँचाई से गिरा है। अचेत होने के लिए इतने मानसिक विकार काफी थे। यही जगतसिंह समर में सैंकड़ों तीरों से भी न डरता और सामने खड़े हुए शत्रुओं से बड़ी सुगमता के साथ युद्ध करता।

अस्तु, ऊपर के कथनानुसार उन दोनों के उपचार से उसका रुधिर बहना बन्द हुआ और वह होश में आया। परन्तु वह यह न जान सका कि मैं कहां हूँ। वह इधर उधर देखने लगा। उसे वहां न तो कोई उसकी जान पहचान का व्यक्ति ही दिखाई दिया और न कोई उसकी जाति का ही। वह जरा घबड़ाया और दोनों के मुख की ओर देखने लगा। तानाजी उसके मन की स्थिति को ताड़ गया और कुछ जानने की इच्छा से उसी की बोली में कहने लगा—"आपको यह कैसे पता लगा कि हम खास उसी जगह पर आवेंगे? आप हमें पकड़ने के लिए ही उतर रहे थे न? पर हम भी कोई कच्चे आदमी नहीं हैं। हम आए थे यह

देखने को कि किले पर चढ़ने के लिए कोई सीधा, सरल रास्ता है या नहीं। हम अपने उद्योग में लगने वाले ही थे कि अचानक आपको नीचे उतरते देखा। हमको अपनी रक्षा करना तो आवश्यक था ही। हम क्या करते! हमने आपको तीर मार कर नीचे गिराने का यत्न किया।"

"क्या आप गढ़ पर अधिकार करने आये थे?" जगतसिंह हर्षित होकर बोला, "यदि ऐसा ही हो तो मैं तुम्हें सहायता दे सकता था क्योंकि गढ़ पर छिप कर चढ़ने के लिए या उतरने के लिए वही एक रास्ता है। यदि मैं तुम्हारा अभिप्राय पहले ही जान सकता तो बड़ा अच्छा होता और मुझे भी लाभ होता। आज तुमने मुझे घायल करके मेरा बड़ा नुकसान किया है। एक राजपूत स्त्री का पातिव्रत्य भंग होने वाला है। उसे बचाने के लिए ही मैं प्रयत्न कर रहा था। उसे छुड़ाकर नीचे उतारने का रास्ता देखने के लिए मैं रस्सी नीचे छोड़े जा रहा था। मेरे सौभाग्य से ऊपर की चौकी पर गश्त देने वाला मल्हार भी मुझसे सहमत था और उसने मुझे सहायता देने का वचन दिया है। बड़े प्रयत्न से मैंने एक रस्सी अपने पास ला रक्खी थी जिसे मैंने उसको दे दिया था कि कोई संदेह न कर सके। मुझसे इशारा पाते ही उसने रस्सी फेंक दी जिसकी सहायता से मैंने नीचे उतरना प्रारम्भ किया इतने में आपके तीर ने मुझे घायल किया। अपने सौभाग्य से ही इस समय मैं जीता हूँ नहीं तो इतनी ऊंचाई से गिरने के बाद मेरे शिर के टुकड़े टुकड़े हो जाते। परन्तु अब भी हर्ष करने का कोई कारण नहीं है।

"क्यों भला ? आप क्या कहते हैं ?—आनन्द मनाने का कोई कारण नहीं ! आप जीते जी बच गए वह क्या कोई बुरी बात हुई ?" तानाजी बड़े आश्चर्य से बोले।

"अब और क्या बुरी बात होने को बाकी रही है ? सब कुछ बुराई होली। उस सती को मैंने उस दुष्ट उदयभानु से मुक्त करने की प्रतिज्ञा की थी। किन्तु अब सब प्रयत्न विफल हो गए। वह कामान्ध अब नवमी की रात को उससे अवश्य जबरदस्ती निकाह कर लेगा। औरङ्गाबाद से उसने एक काजी को बुला रक्खा है। आजकल हिन्दुओं का दुर्भाग्य ही दुर्भाग्य दिखाई देता है। जिस को हाथ में लेते हैं वह कभी सफल होता ही नहीं। भगवान शंकर न मालूम आपके मन में क्या है ? क्या हिन्दुओं का सिर ऊंचा न होगा ? क्या हमारी माता, भार्या आदि, इन सब की लांछना ही हमको देखनी होगी ? क्या उनका सतीत्व भङ्ग ही हम देखेंगे ? क्या उदयभानु जैसे अधमाधम धर्म भ्रष्ट देशशत्रुओं की सदा जय ही होगी ? अच्छा भगवान जैसी आपकी इच्छा !" इतना कहकर उसने एक लम्बी सांस ली।

जगतसिंह की बातें सुनकर तानाजी तथा रायजी को बड़ा कष्ट हुआ। उदयभानु को खोटी खरी कहने वाला वह सिपाही कौन है ? किस पतिव्रता को मुक्त करने के लिए यह प्रयत्न कर रहा है? उन दोनों ने पूरा पूरा वृतान्त सुनाने के लिए उससे प्रार्थना की। इस पर उसने कमलकुमारी का सब हाल कह सुनाया और फिर इस प्रकार कहने लगा:—

"बादशाह की अनुकम्पा से वह आजतक इस अत्यन्त घृणित

प्रसंग मे किसी प्रकार बची भी रही, नहीं तो अब तक उस दुष्ट की कामाग्नि में उसकी आहुति कभी की पड़ गई होती या वह आत्म-हत्या कर के जान दे डालती। परन्तु औरगजेब की इच्छा से उसे माघ वदि नवमी तक का अवसर मिल गया। मेरी स्त्री उसकी प्यारी सखी है। जब कमलकुमारी सती होने के लिए निकली थी तब वह भी उसके साथ वन में गई थी। जब वह दुष्ट कमल-कुमारी को पकड़ कर ले गया तब उसने मेरी पत्नी से वापिस चली जाने को कहा परन्तु वह कमलकुमारी की सेवा करने के वहाने उसके साथ रह गई। मुझे यह खबर लगते ही मैं तुरन्त उनके पीछे २ दिल्ली पहुँचा। दिल्ली पहुँचकर मैंने उदयभानु के घर का पता लगाया। किस प्रकार अपनी स्त्री या कमलकुमारी को इशारा करूँ, किस प्रकार उनके पास संदेशा भेजूँ—इस उधेड़ बुन में मैं उदयभानु के बाड़े के पास पागल की भांति घूम रहा था। मैने उदयभानु को कमलकुमारी तथा उसके पिता को बादशाह के महल की तरफ ले जाते हुए देखा। मेरी स्त्री अपनी सखी को धीरज देने के लिए दरवाजे तक आई। उसने भी मुझे देख लिया और ठहरने के लिए संकेत किया तथा ऊपर जाकर उसने झरोखे में से परदे के भीतर से एक चिट्ठी फेंक दी। चिट्ठी में उसने मुझे दूसरे दिन सुबह के समय आने के लिए लिखा था। उसके अनुसार अगले दिन जब मैं भिखारी के भेप में वहाँ पहुँचा तो उसने मुझे एक रोटी दी। उस रोटी के भीतर एक चिट्ठी निकली जिसमें सब हाल लिखा था। उसमें लिखा था—"बादशाह ने हमें दिन गहने की अवधि दी है, इसलिए हमारी मुक्ति का प्रयत्न यदि

कर सकते हो, तो करो। नहीं तो कुल को प्रतिष्ठा रखने के लिए कुछ भला-बुरा हम ही को करना पड़ेगा। नहीं कह सकती कि चट्टान से कूद पड़ कर हम अपनी जान दे दें या संताप में मर कर ही प्राण खो दें" यह चिट्ठी पढ़कर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि यदि मैं राजपूत का बच्चा हूँ तो इस अवधि के भीतर उस दुष्ट का नाश कर इन दोनों को रक्षा करूँगा। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये मैंने उदयभानु की भारी सेना में प्रवेश किया। मैं कौन हूँ, इसके बारे में किसी को कुछ पता नहीं लगने दिया। रास्ते में एक दिन हम नर्मदा नदी के तट पर ठहरे थे। वहाँ सब लोग नदी में तैरने के लिए गये। उनमें से एक विशालदेव नाम का राजपूत डूबने लगा। उसके साथी देखते रहे, किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उसको बचाए। तब मैंने कूद कर उसे जीते जी निकाला। उसी समय से यह विशाल-देव मेरा परम स्नेही मित्र हो गया है। उसने मुझे सिपाही बनवा दिया और खास चौकीदारों में मेरी भरती करवा दी। तब से किसी युक्ति से मैं उन्हें धीरज दिलाता आ रहा हूँ और वे भी किसी तरह मेरे आश्वासन पर जी रही हैं। नहीं तो, अब तक उन्होंने आत्महत्या कर ली होती। क़िले में ऊपर जो सेना है उसमें एका नहीं है। उदयभानु के सख्ती करने को भी वह कुछ नहीं मानती। जो पुराने लोग हैं वे इसको ऐंठ देख कर इससे द्वेष करते हैं, जो लोग नये इसके साथ आए हैं वे भी इसका द्वेष करते हैं क्योंकि यह हीन-कुलोत्पन्न होकर शेखी से चलता है और असली राजपूतों से द्वेष रखता है। बहुत से लोग इससे इस कारण से भी नाराज़ हैं

कि यह एक सती पर अत्याचार कर रहा है। इन सब कारणों से कमलकुमारी को मुक्त करके मेरे भाग आने पर भी मेरा पीछा किए जाने की सम्भावना बहुत कम थी। मैं कौन हूँ, यहां आने का मेरा उद्देश्य क्या है, इन बातों को केवल विशालदेव ही जानता है। वह मुझे पूर्ण सहायता दे रहा है। परन्तु अब मैं इस अवस्था में पड़ा हूँ, अब मेरे हाथ से क्या हो सकेगा! भगवान शंकर, आपकी ही शरण है।"

जगतसिंह की यह कथा तानाजी और रायजी एकचित्त होकर सुन रहे थे। कमलकुमारी अपने पति की पादुकाएँ लेकर सती होने जा रही थी और उदयभानु उसे खींच कर ले गया, यह वृत्तान्त सुन कर तानाजी की भुजाएँ फड़कने लगीं, उसके नेत्र लाल हो गये, चेहरा तमतमा गया और वह दांत पीसने लगा। कमर में लटकती हुई तलवार के ऊपर उसका हाथ अनायास ही जा पड़ा।

यही व्यवस्था रायजी की भी हुई। उसकी भृकुठी ऊपर चढ़ी हुई थी, दृष्टि में क्रूरता आ गई, मुट्ठियां तन गईं, नथने फूल उठे, और वह अपने अधर को दाँतों से चबाने लगा। वह आवेश के साथ उठ खड़ा हुआ मानों उदयभानु को मार कर उस साध्वी की मुक्ति के लिए वह अभी गढ़ पर कूद पड़ने को तैयार हो। तानाजी ने जगतसिंह का हाथ पकड़ा और कहा, "जगतसिंह, हमने आपको बाधा अवश्य पहुंचाई है परन्तु मेरे लोगों की पहली पलटन यह परसों, अर्थात् अष्टमी की रात को या रात बीतने के [illegible] नुग्रह, वहीं नियत स्थान पर आवेगी। दूसरी पलटन दूसरे

दिन प्रातःकाल आने वाली है। वह आजाएगी तब तो बहुत ही अच्छा होगा; यदि न आई तो भी कोई हानि नहीं। पहली पलटन में जितने आदमी आएँगे—पाँच, पचीस या पचास उतने ही साथ में लेकर मैं गढ़ के ऊपर कूद पड़ूँगा। नवमी की मध्य रात्रि बीतने के पहले ही, उदयभानु के उससे निकाह करने पूर्व ही मैं महाराज की दी हुई इसी तलवार के साथ उदयभानु का निकाह कर दूँगा। मैं अधिक नहीं बोला करता हूँ। सती के पुण्य से इन पचास लोगों से ही मैं जय प्राप्त कर सकूँगा।"

इतना कह कर तानाजी चुप हो रहा। उसके मन में तरह २ के विचार आ रहे थे। कुछ देर तक एक अक्षर भी वह न बोला। उसका चेहरा देख कर उससे बोलने का किसी दूसरे को भी साहस न हुआ।

अभ्यास—

१—गढ़ के पहरे की सच्ची कैफ़ियत लिखकर समझाओ।

२—जगतसिंह कौन था तथा उसका क्या उद्देश्य था? गिर कर उसके अचेत होने का क्या विशेष कारण था? जगतसिंह ने अपना जो पूर्व परिचय तानाजी आदि को दिया उसे तानाजी तथा उसकी बात-चीत के रूप में, अपने शब्दों में कहला कर लिखो।

३-जगतसिंह के वृतान्त को सुनकर रायजी व तानाजी में क्या शारीरिक विकार पैदा हुये? उन विकारों से उनकी किस मानसिक अवस्था का पता चलता है? प्रत्येक विकार और उनके अभिप्राय को अच्छी तरह समझाकर लिखो। तानाजी की प्रतिज्ञा को भी अपने शब्दों में दोहराओ।

४—पूरे परिच्छेद का एक सार तीन पृष्ठ में लिखो।

५—उर्दू तथा नए शब्दों की तालिका बनाकर उनके अर्थ लिखो।

६—निम्न लिखित वाक्यांशों को अच्छी तरह समझाओ—

रक्षा करने वाले के आगे मारने वाले का बस नहीं चलता, आयु का तन्तु मजबूत है, हम भी कच्चे आदमी नहीं हैं, मेरा पीछा किए जाने की संभावना बहुत कम थी।

—:—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

दिल्ली का पत्र

जैसे जैसे माघ बदि नवमी का दिन समीप आने लगा वैसे ही वैसे उदयभानु का मन भी अत्यन्त अस्थिर रहने लगा। उसे कोई काम भी नहीं था। जसवन्तसिंह और शाहज़ादा मुअज्जम के विषय में उसे जो कुछ लिखना था सो बादशाह को लिख कर भेज चुका था। किले पर सब प्रकार की व्यवस्था हो गई थी। वह मनमें सोचता था कि जसवन्तसिंह के स्थान पर अपना तबा-दला होने तथा दक्खिन के सूबेदार बनने के बाद किसी बात की कमी नहीं रहेगी और फिर वर्ष आधे वर्ष में उस शिवाजी को भी पकड़ कर बादशाह के आधीन कर दिया जायगा। एक बार ऐसा कर दिखाया जायगा कि बादशाह भी खुश हो जायगा। बादशाह के खुश हो जाने के बाद फिर एक उससे उदयपुर के ऊपर आक्रमण करने का परवाना लेकर, जिन लोगों ने हरदम अपमान किया है उनको अच्छी तरह ठीक कर देंगे। अब तो

माघ वदि नवमी का दिन भी समीप आ गया था उस रोज आधी रात को कमलकुमारी के साथ निकाह करके उसके पिता को, महाराज राजसिंह को, तथा अन्य जो जो राजपूत उसे छोटा समझते थे उनको पत्र लिखने का वह इरादा कर रहा था जिससे वे लोग समझ जाएँ कि उसकी कितनी प्रतिष्ठा है। जैसे जैसे वह दिन समीप आने लगा वैसे वैसे वह कमलकुमारी के पास अधिकाधिक जाने लगा और उसे, अब इतने दिन रहे, अब इतने दिन बाकी रहे, आदि बातें कह कर चिढ़ाने लगा। पर देवलदेवी कमलकुमारी को बार बार आश्वासन देती रहती थी। वह बार बार कहती, "इस तरह खेद करने से काम न चलेगा, बल न रहने से इष्ट कार्य में सिद्धि कैसे मिलेगी? क्योंकि किसी दिन हमको रस्सी पकड़ कर गढ़ पर से उतरना ही पड़ेगा।" वह हमेशा कहा करती कि आज मेरे पति, जगतसिंह ने अमुक प्रकार कहा है, आज कोई महार उन्हें सहायता देने के लिये तयार हुआ है, आदि। इस प्रकार वह उसका उत्साह बढ़ाती रहती थी और इसमें उसको सफलता भी मिलती थी। जगतसिंह ने देवलदेवी को एक चिट्ठी भेजी जिसे पढ़ कर कमलकुमारी को हर्ष हुआ। उस चिट्ठी में लिखा था— "माघ वदि पञ्चमी के दिन, मध्य रात्रि के समय मैं स्वयं गढ़ के तट पर रस्सी फेंक कर एक बार परीक्षा करूँगा और यदि अवसर मिला तो उस समय एक चिट्ठी भी फेंक दूंगा जिसमें आगे की तैयारी का हाल लिखा होगा। महल की चौकी पर जो सिपाही हैं वे सब मुझसे मिले हुए हैं, इस लिए तुम्हारी चिट्ठी मुझको और

मेरी चिट्ठी तुमको मिलने में कोई दिक्कत नहीं होगी। परन्तु चिट्ठी नियत समय पर ही फेंकनी होगी, नहीं तो सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा।

कमलकुमारी तथा देवलदेवी का दृढ़ विश्वास था कि जगतसिंह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है और जो काम वह हाथ में लेता है उसे कर ही डालता है, कभी चूकता नहीं। इसलिए वे दोनों पत्र पाकर समझने लगीं कि हम लोग छुटे हुए से ही हैं। कमलकुमारी का मुख आज आनन्द से खिल गया था जिसे देखकर उदयभानु को विस्मय हुआ, क्योंकि उसका इतना प्रफुल्ल मुख उसने कितने ही दिनों से नहीं देखा था। उसने सोचा कि 'अब केवल दो-तीन दिन बचे हैं जिनमें मुक्ति की सम्भावना बहुत कम है, अतः अब खेद करने, रोने-धोने से क्या लाभ'— ऐसा खयाल करके शायद कमलकुमारी आनन्दपूर्वक विवाह करने और दुःख, चिन्ता आदि को छोड़ देने को तैयार हो गई है। इसी प्रकार उदयभानु अपने मन में विचार कर रहा था तथा हवा के किले बाँध रहा था। परन्तु कमलकुमारी से उसने यह न कहा कि "तुझे आनन्दित देख कर मुझे बहुत संतोष होता है।" उसे डर था कि यह उसके बात करने से नाराज न हो जाए। अन्त में; अपने मन मे अनेक प्रकार के विचार करता हुआ वह वहाँ से चल दिया। उस दिन वह हर्ष में था और अपने मन के महल की ऊँची ऊँची मीनारें बनाने में मग्न हो रहा था।

इधर पञ्चमी के दूसरे दिन की कारवाई के सम्बन्ध में जगतसिंह की चिट्ठी पाने की आशा से देवलदेवी नियत स्थान पर

पहुँची; परन्तु वहाँ चिट्ठी न देख कर वह बहुत घबराई। आज यदि तयारी नहीं हो सकी तो कल होगी, इस विषय की सूचना के लिए तो चिट्ठी होनी ही चाहिए थी।— वह भी वहाँ नहीं थी। देवलदेवी के हृदय में अमंगल का भय हुआ और वह चिन्ताग्रस्त हो गई। नियत स्थान पर उसने बड़े गोर से बार बार देखा परन्तु कहीं भी कुछ नहीं मिला। हजारों विचार उसके मनमें आए। वह डर रही थी कि कोई खराबी तो नहीं हुई। हाथ छूट जाने से कहीं जगतसिंह रस्सी पर से नीचे तो नहीं गिर पड़ा। शायद उदयभानु को सब बातों का पता लग गया हो और उसने उन्हें कारागार में डाल दिया हो। देवलदेवी की समझ में कुछ नहीं आया। परन्तु उसने सोचा कि यह बात कमलकुमारी से कहना ठीक नहीं है।

परन्तु बहुत बार ऐसा होता है कि मुख की आकृति से ही सब कुछ समझ में आ जाता है। कमल कुमारी भी देवल देवी से समान ही आशायुक्त थी, किन्तु जब उसने देवलदेवी का चेहरा देखा तो वह जान गई कि कुछ न कुछ अनिष्ट की बात जरूर है। उसने देवलदेवी से समाचार पूछा और देवलदेवी ने यह कह कर टाल दिया कि 'कुछ समझ में नहीं आता, क्या समाचार है।' किसी किसी समय कुछ न कुछ समझना ही आवश्यक होता है और उस समय यदि कह दिया जाय कि "समझ में नहीं आया" तो उस की अपेक्षा तो अनिष्ट की बात कह देना ही अधिक अच्छा है, क्योंकि इससे मनुष्य एकदम निराश हो चुपचाप होकर तो बैठ रहता है। कुछ समझ में नहीं आने से चिन्ता

खेद लगे रहते हैं। ठीक वैसी ही अवस्था इस समय हमारी नायिका और उपनायिका की थी।

उस दिन घड़ी २ में उन दोनों की मनः स्थिति कैसी होती थी यह कहना कठिन है। देवलदेवी अपने सौभाग्या—रवि के अस्त होने की आशंका से व्यथित हो रही थी। उसके मन में कल्पनाएँ उठ रही थीं कि उसका पति रस्सी पर से, रस्सी हाथ से छूट जाने से, या अन्य किसी प्रकार तट पर से अथवा चट्टान पर से शायद गिर पड़ा है। सिंहगढ़ की चट्टानें बड़ी भयानक हैं। नीचे गिरने वाले की हड्डियों तक का मिलना कठिन हो जाता है। पति की ऐसी अवस्था की कल्पना कर उसे रोमाञ्च हो आया। जिस आशा से वह कमलकुमारी को धीरज देती थी वह आशा अब न रही। कमलकुमारी को धीरज देने के बदले में अब कमलकुमारी के लिए उसे धीरज दिलाने की अवस्था प्राप्त हो गई। पति स्त्रियों का जीवन-सर्वस्व होता है, उसी जीवन-धन से अब उसे वञ्चित होना पड़ेगा-यह विचार ही देवलदेवी के लिए बड़ा भयंकर था। जिसके आधार पर स्त्रियाँ जगत में दुःख तथा क्लेश को हँसी-हँसी सहन कर लेती हैं उसका विनाश होजाने के बाद फिर बच ही क्या रहा ? जिसके परलोकगामी होने से पहले वे स्वयं मरने की इच्छा रखती हैं वह मृत हो गया-यह विचार हृदय को सहसा कम्पित कर देता है। देवलदेवी की इस समय ऐसी ही अवस्था थी। उसका कलेजा टूक २ हो रहा था। परन्तु वह धीर स्त्री थी; उसने सोचा कि यदि मैं ही निराशा दिखलाऊँगी तो कमलकुमारी तत्काल प्राणत्याग कर देगी। इस विचार से उसने इच्छा की कि

अपने दुःख को प्रकट न होने दे—अब उन दोनों के प्राणत्याग करने में ही कौन सी हानि थी। पति की मृत्यु के अनन्तर उन्हें छुड़ाने वाला कोई नहीं था। प्राणत्याग से जो मुक्ति मिलेगी वही अब एक मात्र मुक्ति थी ? इस शरीर में से जब प्राण ही निकल गए तो इसकी क्या अवहेलना होगी, इसकी चिन्ता ही क्या ? ऐसा सोच कर देवलदेवी मन में तर्क करने लगी कि किसी रीति से प्राणत्याग करके छुटकारा पाया जाए।

परन्तु अपने पति के सम्बन्ध में उसे निश्चय रूप से तो कोई खबर अभी मिली नहीं थी। इस कारण उसे यह भी भय था कि यदि हम दोनों ने प्राणत्याग कर दिया और उधर आज रात या कल रात को कोई चिट्ठी आगई तो मेरे पति को निराशा होगी। तीन महिने तक उन्होंने जो नाना प्रकार के क्लेश सहन किए और दोनों को छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया वह सब केवल एक दो दिन की अधीरता और जरा-सी देर की मूर्खता से निष्फल हो जाएगा। इससे उचित यही है कि आत्महत्या न कर नवमी के सायंकाल तक प्रतिक्षा की जाए और यदि उस समय तक भी कोई खबर न पहुँचे तो देह त्याग कर दिया जाए। यही विचार देवलदेवी ने निश्चित किया और उससे उसकी आत्मा को संतोप भी हुआ।

इस समय उसके मन की अवस्था तूफान में पड़े हुए जहाज़ के समान थी। कभी जहाज़ कैसी प्रचंड लहर के ऊपर आकर उसके शिखर तक पहुँच जाता और लहर के कम होते ही नीचे आकर फिर दूसरी लहर में पड़ जाता है। वैसे ही उसका मन भी उथल-पुथल हो रहा था। किसी आशा का आधार पाते ही उसे

भावना थी—प्रेम। इस समय वह इसी भावना से उसको प्राप्त करने की इच्छा करता था। शुद्धता बहुत दुर्लभ है। अशुद्ध, अपवित्र मनुष्य भी शुद्धता की, पवित्रता की, इच्छा रखता है। जो मनुष्य स्वयं अपवित्र है वह भी दूसरे पवित्र मनुष्य की प्राप्ति, सहवास, प्रेम की इच्छा करता है। उदयभानु का भाव कुछ कुछ ऐसा ही हो चला था। केवल ऐंठ के ही कारण नहीं बल्कि प्रेम से भी वह कमलकुमारी की इच्छा करता था।

वह माघ बदि नवमी का दिन था। उदयभानु आनन्द से फूला न समाता था। जो इच्छित फल उससे दूर दूर भाग रहा था वह अब थोड़ी ही देर में उसका होने वाला था, इस विचार से उसका चेहरा खिल रहा था। यहां से छुटकारा पाने की आशा से कमलकुमारी यद्यपि अभी तक उससे दूर रही थी, तथापि एक बार निराशा हो जाने पर, विवाह हो जाने के बाद, अपने भाग्य पर संतोष कर वह प्रेम भाव से बर्ताव करने लगेगी और थोड़े दिनों में उसे अपना तन-मन और धन सब अर्पण कर देगी, इसकी उदयभानु को पूर्ण आशा थी। वह उसी आशा में मग्न था कि उसे सूचना मिली कि दिल्ली से कोई सवार थैली लेकर आया है। थैली लेकर आने का अभिप्राय यह था कि बादशाह ने कोई पत्र भेजा है। यह पत्र उसके पत्र का उत्तर नहीं था। यद्यपि उसका भेजा हुआ सिपाही बड़ी शीघ्रता से गया था तथापि उसके वापिस आने का समय अभी नहीं हुआ था। बादशाह के पत्र भेजने का कारण जानने की उसे उत्सुकता हुई और उसने अपने सेवकों से सवार के पास से थैली लाने के लिए कहा। आज माघ

यदि नवमी के ही दिन इस पत्र को भेजने में बादशाह का कोई अभिप्राय तो नहीं है, यह डर उसके उत्पन्न हो उसका कलेजा कंपाने लगा। उसे संदेह हुआ कि बादशाह स्वयं कमलकुमारी पर आसक्त है और इसीलिए उसने अपना हुक्म पलटने को यह सवार भेजा है। उदयभानु संशय में पड़ गया कि इस पत्र को अभी खोलना चाहिए या निकाह हो जाने के बाद, क्योंकि यदि उस पत्र में विवाह के निषेध की आज्ञा हुई तो वह उसके विरुद्ध नहीं जा सकेगा। उसने इरादा किया कि पत्र को इस समय रख दे और विवाह हो चुकने के बाद ही पढ़े। इस विचार से उसने पहले तो थैली को अलग रखवा दिया। फिर, न मालूम क्यों खयाल करके, सेवक को फिर उठा लाने की आज्ञा दी। पहली थैली खोलकर उसके भीतर से दूसरी थैली निकाली और उसमें से पत्र निकालने लगा। उसने सोचा—'बादशाह से डरने का मुझे क्या कारण है? यदि मेरी इच्छित वस्तु की वह भी इच्छा करता है तो मैं उसकी पर्वाह क्यों करूँ? यदि कोई ऐसा अवसर हुआ तो मैं साफ कह दूंगा कि मुझे थैली नवमी के दिन नहीं मिली। यदि सवार मेरे विरुद्ध गवाही को खड़ा होगा तो उसका प्रबन्ध आज ही किए देता हूँ। मैं अपनी वस्तु कभी बादशाह को नहीं दे सकता।" उसने थैली के बन्द खोलकर अन्दर का पत्र निकाला। पत्र के ऊपर बादशाह की मुहर का सिक्का लगा हुआ था। उसने मुहर को खोला पत्र के चारों ओर सुनहरी अक्षर मानों मोती के दाने थे। बादशाह औरङ्गजेब खुद लिखना पसन्द करता था। अपने दस्तूर के मुताबिक उसने वह पत्र लिखा था। अक्षर

बहुत ही सुन्दर थे। पहले की चार पंक्तियां पढते ही उदयभानु का मुख कमल की भांति खिल गया। रिती के अनुसार प्रशस्ति आदि के बाद लिखा था—"अपनी आज्ञा के अनुसार तुम्हारे आचरण से प्रसन्न होकर मैं कमलकुमारी को तुम्हें अर्पण करता हूँ। तुम दोनों के यहां से चले जाने के पन्द्रह दिन बाद उसका पिता गुजर गया। काफिर की भांति वह मुझे गालियां देता और और अपनी कन्या का नाम रटता हुआ शैतान के राज्य में चला गया। कमलकुमारी के पिता के स्थान पर अब मैं ही हूँ। उसके दहेज के रूप में मैं तुम्हे कोई प्रान्त भी जागीरी में दे दूंगा। तुम्हारे समान ईमानदार सेवक बहुत कम होते हैं। जैसा तुमने आज तक बर्ताव किया है आयन्दा भी वैसा ही ईमानदारी का बर्ताव रखते हुए उस काफिर शिवाजी को भी—शैतान उस की औलाद को गारत करे पकड़कर मेरी सेवा में ले आओ जिससे मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर और भी बढ़ जाय। मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हें सुख मिले, परन्तु अपने सुख में मस्त होकर उस काफिर का या उसके साथियों को अपनी गर्दन उडाने का मौका मत दे बैठना। उसने आज तक कितने ही सरदारों की गर्दन उड़ाई है। इसलिए मैं तुम्हें सावधान करता हूँ। नहीं तो तुम अपने मौज के दरिया में ही गोते लगाते रहोगे और यह किसी रात को आकर तुम्हारी गर्दन छांट ले जायगा। अल्लाह उससे तुम्हारी रक्षा करे और तुमको ईमानदारी के साथ बादशाह की सेवा करते रहने की सुबुद्धि दे।

पत्र पढ़कर उदयभानु बड़ा हर्षित हुआ। मैं कहाँ हूँ क्या

करता हूँ, यह भूल कर वह खूब खुल कर हँसा। उसके शरीर में राजपूत रक्त था, जिससे निसर्गतः वल बोल उठे—भगवान शङ्कर तेरी महिमा अगाध है मानो वह भूल गया था कि मैं मुसलमान हो चुका हूँ। स्वर्ग सुख की प्राप्ति होने के लिए अब थोड़ी ही देर थी। उसने अपने भावी सुख की कल्पना में मग्न होकर सोचा कि एक बार कमलकुमारी के महल में हो आऊँ। वह उस ओर को चल दिया।

जो समय उदयभानु के लिए वड़े सुख—समारोह का था, वही कमलकुमारी के लिए दुःख की पराकाष्टा का समय था। जैसी अवस्था किसी की उसे वध्यस्थान पर ले जाकर शिक्षा सुनाने के बाद होती है वैसी हीअवस्था इस समय कमलकुमारी की थी। हरघड़ी उसको ध्यान रहता था कि मेरी आयु का एक एक क्षण कम हो रहा है—मृत्यु समय नजदीक आरहा है। पहले जगतसिंह से कुछ सहायता मिलने की आशा थी, पर अब वह भी समूल नष्ट होगई। दिन निकल आने के बाद तो आशा बिलकुल ही नहीं थी। तीन दिन के इस बीच में जगतसिह के पास से कोई संदेश नहीं मिला था। जिससे देवलदेवी का संदेह भी पक्का हो चला था कि वह जीता-जागता नहीं है। वे दोनों एक दूसरे की तरफ देखती हुई अपने अपने शोक में मग्न थी, और एक दुसरी की ओर देखकर ही वे एक दूसरी का समाधान कर रही थीं। मुँह से शब्द निकालने की सामर्थ्य अब उनमें नहीं थी।

इस अवसर पर उदयभानु के आने का समाचार उन्हें मिला। सुनते ही उनके होश उड़ गए। कमलकुमारी भय के मारे घबड़ा

गई। वह बिलकुल सफेद पड़ गई, मानो उसके शरीर का रक्त ही सूखगया हो। वह काँपने लगी। यह देखते ही देवलदेवी का साहस बढ़ गया। कोई कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका साहस संकट-काल में ही विशेष उद्दीप्त होता है। इस समय तक वह अपने पति के लिये शोक कर रही थी परन्तु अब यह देखकर कि यह दुष्ट उसका तथा कमलकुमारी का अपमान करने के लिए आ पहुँचा है वह उत्तेजित हो उठी; मानो कमल कुमारी का और उसका रक्त इकट्ठा होकर उस अकेली के ही शरीर में उबलने लगा हो। वह लाल-लाल होगई। उसके विशाल नेत्र लाल होकर मानो आग के अंगारे बरसाने लगे।

उदयभानु परदा हटाकर भीतर प्रवेश करना ही चाहता था कि देवलदेवी क्रोध—भरे शब्दों से उसपर टूट पड़ी—"उदयभानु हिंस्र व्याघ्र हरिणी के ऊपर झपट कर उसे मारने से पूर्व अपने क्रूर नेत्रों से उसको देखता है और जब हरिणी डरती है तो वह आनन्दित होता है। क्या तू भी उसी व्याघ्र के समान है? तुझे अपने को राजपूत मर्द कहते हुए शर्म नहीं आती? तमाम प्रयत्न कर चुकने पर भी तुझे जीते-जी तेरा शिकार नहीं मिलेगा। मृत शरीर की विडम्बना करनी होतो तू कर सकता है। फिर, बार बार तेरे यहां आने का क्या कारण है? ......"

देवलदेवी का यह अभिनयदेखकर उदयभानु तत्काल स्तम्भित हो गया। वह एक शब्द भी न बोल सका। परन्तु उसका भाषण सुनकर उसे एक सन्देह हुआ। यदि देवलदेवी की सलाह से कमलकुमारी ने आत्महत्या करली तो बड़ी मुश्किल होगी।

इससे, उचित यह होगा कि कुछ कठोरता दिखा कर इन दोनों को एक दूसरी से अलग करदिया जाय। परन्तु ऐसा करने का उपाय उसकी समझ में न आया। अन्त में उसने अपने ज़नानखाने की हब्सी दासियों द्वारा देवलदेवी को चुपचाप उठाकर कहीं अन्यत्र डलवा देने का निश्चय किया तथा बाद में उसने ऐसा ही किया। उसे डर था कि वह आत्म-हत्या न करले। कमलकुमारी को भी उसने अपने महल में ही रखवाया और उसपर दो हब्सी दासियों का पहरा करवा दिया। दुष्टों को जब अपने हेतु की सिद्धि में शंका होती है तो उन्हें तरह तरह की युक्तियां सूझा करती हैं और वे तुरन्त उन युक्तियों को अमल में ले आते हैं।

अभ्यास—

१—इस परिच्छेद में वर्णित देवलदेवी और कमलकुमारी की परिस्थितियों और उनकी अलग २ विचार पद्धति का अच्छी तरह निरूपण करो।

२—निकाह के एक दो रोज़ रहने पर उदयभानु की जो मानसिक अवस्था थी उसका सप्रमाण वर्णन करो इस नई अवस्था का उसके स्वाभाविक चरित्र से कहाँ तक सम्बन्ध है, वह भी सिद्ध करो।

३—बादशाह का पत्र आने पर उदयभानु के मनमें जो तर्क-वितर्क उत्पन्न हुए उनका विवेचन करो और बताओ कि इस प्रकार के तर्क-वितर्क से उसके चरित्र की क्या बात सिद्ध होती है।

४—उदयभानु के आने का समाचार पाकर देवलदेवी और कमलकुमारी की क्या दशा हुई तथा देवलदेवी ने क्या कहा? उदयभानु ने तब क्या किया? उसके आचरण से उसके स्वभाव की पुष्टि करो।

५—इस परिच्छेद में तुम्हें जो जो अच्छे मुहावरे तथा सुन्दर वाक्य मिले हों उनको समझाते हुए उनका स्वतन्त्रण प्रयोग करके दिखाओ।

६—नए हिन्दी तथा उर्दू शब्दों के अर्थ लिखकर उनका भी स्वतन्त्र प्रयोग करो।

—०—

स्थानों पर कमन्द लगाकर ऊपर चढ़ जाएँ, और पहरा देने वाले सिपाहियों को ठिकाने लगा, कमलकुमारी को रात में छुड़ा कर वहीं के राजपूत सिपाहियों के अधीन करदें और उनसे प्रार्थना पूर्वक कहदे कि 'भाइयों, यह तुम्हारी बहन है, इसके पातिवृत्य की रक्षा करो।' यह निश्चय करना मानो मरने का ही निश्चय करना था। किन्तु प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए यह करना आवश्यक था। अपने मन की वेदना को वही जानता था। जो पुरुष आत्माभिमानी होते हैं वे अपने वचन की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं। जब वे देखते हैं कि प्रतिज्ञा का भंग होरहा है तो मृत्यु की इच्छा करते हैं। वे जब किसी कार्य को उठाते हैं तो उसे पूरा करने के लिए प्राण तक दे डालते हैं अपने मन में निश्चय करके तानाजी ने जगतसिंह से कहा—

"जगतसिंह, जिस समय तुम अपनी पत्नी की तथा उस सती की मुक्ति के विचार से निकले थे तो अपना शिर हथेली पर रख कर ही निकले थे। जब मैंने तुमसे कहा था कि मैं माघ वदी नवमी के पहले ही उस स्त्री की मुक्ति करूँगा तो मैंने भी अपनी हथेली पर सिर रख लिया था। अब हमारा कर्तव्य यह है कि [illegible]रा होते ही हम दोनों ऊपर चढ़ जाँय और जो जो लोग बीच [illegible]त आयें उनको समाप्त करते हुए कमलकुमारी की कोठरी तक कर उसकी रक्षा करें। इस प्रयत्न में अपना जो कुछ होवे हो जाए। प्रतिज्ञा भंग होने की अपेक्षा मृत्यु ज्यादा अच्छी है दोनों ही मिलकर अब इस काम को करेंगे।"

"क्यों, दोनों ही क्यों? मैं तीसरा जो हूँ" बाहर से आवाज़

आई। तानाजी ने जो मुंह उठाकर देखा तो इसी प्रकार एक और व्यक्ति ने भी कहा," और मैं बूढा भी एक चौथा हूँ। कुछ थोड़ा बहुत तो करूँगा ही। अपनी उम्र के अस्सी वर्ष मैंने नाहक नहीं खोए हैं।"

दो व्यक्तियों के ये शब्द सुनते ही और उन दोनों को देखते ही तानाजी का चेहरा खिल गया। वह उसी दम बूढ़े से बोला, "शेलारमामा, अभी आए हो क्या? रायजी इतना विलम्ब क्यों हुआ? सुबह से मेरी धीरता लुप्त हो रही थी। सोचता था, न मालूम अब क्या होगा। मामा, सूर्याजी आगया कि नहीं? यदि वह आजाएगा तो दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं होगी। मामाजी, तुम्हें बड़ा परिश्रम हुआ।"

"अजी परिश्रम क्या है इसमें! येसाजी पचास लोगों की एक टुकड़ी साथ लेकर आया है। उसने मुझे आगे नहीं आने दिया। सूर्याजी बहुत से लोग लेकर पीछे आ रहा है। येसाजी ने कहा है कि सूर्याजी रात के दस बजे से पहले-पहले जरूर आजाएगा। उसकी चिन्ता मत करो! अब आगे की तैयारी करो।"

इसके बाद चारों जन विचार करने बैठे। तानाजी ने अबतक जो कुछ किया था। वह सब शेलारमामा को कह सुनाया। बूढ़ा भी चुपचाप सुनने लगा। रायजी ने किस प्रकार उसे गढ़ के चारों तरफ घुमाया, किस प्रकार उसने गढ़के पश्चिम ओर डोंणागिरि नामक चट्टान, जहाँ से जगतसिह उतरने की कोशीश कर रहा था, देखी तथा जगतसिंह कौन था, क्यों आया था इत्यादि सब वृतान्त उसने कहडाला। शेलारमामा सुनते ही आग-बबूला होगया और

उदयभानु को गालियां देने लगा। रायजी और तानाजी ने उसको चुप करने का बहुत कुछ यत्न किया। जब वह जैसे-तैसे चुप हुआ तो रायजी, जगतसिंह और तानाजी ने सलाह कर तय किया कि डोणागिरि ही गढ़ पर चढ़ने के लिए सुगम है, क्योंकि दूसरी अधिक आसान कोई न दिखाई देती थी। तदन्तर किस प्रकार चढ़ना और पहले किसको चढ़ना चाहिए, यह चर्चा चली। तब शेलारमामा आगे बढ़कर बोला 'पहले मैं ही चढ़ूँगा और उस झूँझार दरवाजे को खोलूंगा। देखता हूँ कितने राजपूत आते हैं। उन्हें बतलाऊँगा कि बूढ़े के शरीर में कितना जोश है।" यह कहते कहते बूढ़े का चेहरा देखने लायक होगया। वह फिर बोला "अरे तानाजी, अरे तानाजी, हँसता क्यों है ? यह मेरी निरर्थक बकबक नहीं है। जबमैं उस कमन्द से सर-सर ऊपर चढ़ जाऊँगा तब देखोगे कि बूढ़ा नहीं बल्कि बिलकुल जवान है। मेरी भुजाएँ अभी से फुस फुसाने लगी है।" रायजी की ओर देखकर वह बोला, "अजी वह संदूक जरा लाओ जरा उस कमन्द को देखने दो। अरे तानाजी, ऐसा क्यों बैठा है अब ? देखना, मैं ही सबसे पहले चढ़ूँगा।"

तानाजी ने मामाजी से धीरे से बोलने को कहा। लेकिन बूढे की जुबान कहाँ मानती थी ! "मामाजी", तानाजी बोला, "जब चढने का समय आवेगा तब आपही आगे चढ़ना। पर, इस समय तो आगे का विचार करना है न ?" बूढा अब चुप हो गया परन्तु उसका शरीर उत्साह से भर रहा था। अन्य बातों की चरचा के बाद इन लोगों ने येसाजी के पास संदेश भेजना चाहा कि, 'तुम

अड़तालीस लोगों के साथ सायंकाल होते ही डोणागिरि की तरफ चले आओ और शेष दो आदमी को सूर्याजी की टुकड़ी को यह सूचना देने के लिए छोड़दो कि वे दूसरी तरफ से कल्याण दरवाजे के नीचे आकर मौजूद होजाएँ।" तानाजी, शेलारमामा और जगतसिंह का विश्वास था कि पचास लोगों के साथ गढ़ पर चढ़ जाने के बाद कल्याण दरवाजा खोलने में कोई कठिनता नहीं होगी और फिर एक बार दरवाजा खोल देने पर मामला तय होजायेगा। नीचे तय्यार खड़े सूर्याजी और उनके साथी ऊपर आकर चाहे जो गड़बड़ मचा सकते हैं। सब की अनुमति से यह विचार निश्चित होजाने के बाद रायजी ने एक विश्वासपात्र नौकर को येसाजी के पास संदेस कहने के लिये भेज दिया। इस समय संध्या होगई थी। अँधेरा होने लगा था। तानाजी ने तमाम दिन मुँह में पानी भी नहीं डाला था। तथापि उसे प्यास या भूख की सुध तक नहीं थी। किसी ने भी उसके बारे में नहीं पूछा किन्तु जब शेलारमामा ने उससे पूछा तो उसने कहदिया कि, "जब तक गढ़ न आवेगा और मैं उस साध्वी की मुक्ति न करा लूँगा तब तक मुँह में पानी नहीं लूंगा जगतसिंह ने भी वही जवाब दिया। साथ ही खान पान में समय बिताने अवसर नहीं था और इसलिये इसके ऊपर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

सूर्यास्त होगया और पृथ्वी पर अंधेरा छाने लगा था। शेलार मामा ने सन्दूक में से वह कमन्द निकाली। इसी कमन्द के सहारे शिवाजी महाराज, तानाजी मलुसरे तथा येसाजी कंक आदि वीरों ने कितने ही गढ़ों पर अधिकार किया था। और

इसलिये उन लोगों ने उसका नाम 'यशवन्ती' रक्खा था। उसे बाहर निकाल उन्होने उसके अग्रभाग पर सिंदूर का लेपन किया, मोतियों की जाली चढ़ाई और उसे गढ़ पर चढ़ने के लिए तैय्यार किया।

थोड़ी ही रात बीती होगी कि येसाजी कंक अपने अड़तालीस लोगो को साथ लेकर नियत स्थानपर उपस्थित हुआ। उसे रास्ता बतलाने के लिए रायजी का मनुष्य गया था। अँधेरी रात थी, भयंकर जंगल था, इर्द-गिर्द झाड़ियां लगी हुई थीं, जानवरों का बहुत डर था। परन्तु वे शिवाजी महाराज के मावला लोग थे। वे ऐसे जंगलो से भयभीत न होते थे। उन्होंने पुनः रास्ता ढूंढा। एक दो जगह कोई कोई लोग गिर पड़े, परन्तु फिर शूरता से उठकर चलने लगे। इस प्रकार छै सात घड़ी रात को डोणागिरी चटान के दर्रे में वे लोग आकर खड़े हुए। हमारे चारों वीर पहले से ही वहां मौजूद थे। इनको देखते ही उन अड़तालीस लोगों को ध्यान न रहा और उन्होंने "हर हर महादेव" की ध्वनि आरम्भ की। तानाजी और रायजी ने उन्हें चुप किया। ऊपर के पहरा देने वाले सिपाही ने पूछा, "क्या झगड़ा है" परन्तु नीचे के पहरे वाले कहार और मछुए लोगों ने उत्तर दे दिया कि—"कोई चिन्ता की बात नहीं है। रायजी के यहां के ब्याह का झगड़ा अभीतक चल रहा है! वे लोग भोजन कर चुकने के बाद चिल्ला रहे हैं। बाकी सब ठीक है।" ऊपर के लोग चुप हो गये। वास्तव में, अधिक खोज करने का उन्हें कारण दिखाई नहीं दिया, क्योंकि विवाह का "झगड़ा

सचमुच अभी तक चल रहा था। दूसरे पहरे वालों में इतनी चालाकी और सूक्ष्मदर्शिता भी नहीं थी।

इधर तानाजी ने उन लोगों के अविचार पर उन्हे डाटा और फिर अपनी कमन्द निकाली। उसे प्रणाम कर, "जय अम्बा माता जय भवानी माता, तुम्हारी ही कृपा चाहिए" आदि वाक्य कहते हुए उसे शेलारमामा के हाथ में दे दिया और कहा, "मामा! तुम बड़े हो। तुम्हारे ही हाथ से यशवन्ती फेंकी जानी चाहिए। उसे प्रणाम करो और जैसे मैं कहता हूँ उस तरह फेंको।"

शेलारमामा ने उसकी वन्दना की; पश्चात् उसके मस्तक पर जो सिंदूर विराजमान था उसका तिलक अपने और सब लोगों के भाल पर लगाया। माता भवानी का स्मरण कर तानाजी के बताये हुए स्थान पर उसको छोड़ा। किन्तु कौन जाने, उस समय क्या हुआ-वह ऊपर न जाकर नीचे लौट आई। यह देख शेलारमामा का हृदय संतप्त हुआ क्योंकि कमन्द का लौट आना एक अशुभ चिन्ह था। आज तक कितने ही बार कितने ही गढ़ों के ऊपर उसे फेंका गया था; किन्तु जैसा आज हुआ वैसा कभी न हुआ आज वह वापिस आ गई थी। बूढ़ा सोचने लगा कि आज कोई न कोई अमंगल जरूर होगा। तुरन्त वह तानाजी से बोला, 'तानाजी, आज शुभ चिन्ह दिखाई नहीं देता। मेरी राय में आज इस झंझट में पड़ना अच्छा नहीं। आज तक यह यशवन्ती कभी भी लौट कर नहीं आई। आज वह पीछे लौट आई है! जान पड़ता है कि यह अशुभ है। कहीं कुछ और ही न होजाय।"

परन्तु तानाजी ने प्रतिज्ञा की थी कि आज मैं रात के बारह

बजने के पहले ही गढ़ पर अधिकार करके साध्वी कमलकुमारी को मुक्त करूँगा। इसी कारण से शेलारमामा के शब्द उसे ठीक न मालूम हुए। बड़े क्रोध सेउसने यशवन्ती की शृंखलाको खींचा और कहा, "यशवन्ती, आजतक कम से कम सत्ताईस गढ़ तेरे ही बल से मैंने लिये हैं। आज ऐसे मौके पर दगा देगी तो मै न मानूँगा। फिर एक बार तुझे ऊपर छोड़ता हूँ। ठीक स्थान पर जाकर अच्छी तरह चिपक जाना। अगर नहीं मानेगी तो यहीं तेरे टुकड़े २ करके चारो तरफ फेंक दूंगा।"

इतना कहकर उसने उस कमन्द को फिर से छोड़ा ऐसा मालूम होता है कि उसने भी तानाजी का आदेश समझ लिया था। वह झट ऊपर पहुँच कर एक नुकीली चट्टान पर जाकर चिपक गई।

तानाजी के शब्द सुनकर दूसरे साथियों का भी उत्साह बढ़ा और जब तानाजी ने ललकार कर कहा, "आओ कौन आगे आता है ऊपर चढ़ाने के लिए" तो मोहिता, चवाण, माहडिक, कंक, कणेकर जादव, शेलार, सब आगे बढ़ आये और रस्सी पकड़ने के लिये दौड़े। किन्तु तानाजी को केवल परीक्षा लेनी थी। प्रथम वही आगे आया और रस्सी को हाथ में ले लिया, क्यों कि वह भली भाँति जानता था कि स्वयं आगे बढ़े बिना किसी को पूरी तरह से उत्साह न होगा। इसके बाद वह शेलारमामा से बोला, "देखो, जब तक मैं ऊपर न पहुँच जाऊँ तब तक किसी और को ऊपर न चढ़ने देना क्योंकि रस्सी पर अधिक भार होने से कहीं वह टूट न जाय।"

शेलारमामा स्वयं जाने के लिये तैयार था परन्तु तानाजी सब के देखते ही देखते आगे शत्रु स्थिर हुए तुरन्त ऊपर जा पहुंचा। अनन्तर जगतसिंह आगे बढ़ा। उसने किसी को आगे नहीं आने दिया। बोला, "मैं पहले जाकर तुम्हें सूचना दूंगा। देखूँगा कि ऊपर मामला क्या है, क्यों कि मैं उस स्थान से परिचित हूँ। तानाजी को मुझ से बहुत सहायता मिलेगी।" इतना कहकर उसने रस्सी पकड़ी। उस बेचारे का जख्म अभी तक अच्छा नहीं हुआ था। परन्तु वह शूर राजपूत का बच्चा था, कच्चे दिल का न था। 'जय, एकलिंगजी की जय' की गर्जना करता हुआ वह ऊपर चढ़ गया। ऊपर जा, उसने इशारा कर दिया जिसको पाते ही वे एक के पीछे एक सब चढ़ने लगे।

तानाजी ऊपर खड़ा हुआ था और जगतसिंह गढ़ की कैफियत देखने के लिए इधर-उधर घूमने लगा। यदि कोई प्रश्न पूछता भी तो वह राजपूत भाषा में जवाब दे देता जिससे उस पर कोई संदेह न करता। इधर जो मनुष्य ऊपर चढ़ कर आता तानाजी उससे अपने शस्त्रों से तैयार रह कर जमीन से दबके रहने को कहता। इस प्रकार कोई बारह मावला ऊपर चढ़ आये। तब उन्होंने कील ठोक कर उसमें दो रस्सियाँ बाँधी। इतने में झुंकार बुर्ज के पास घूमते हुए एक राजपूत को नीचे के दर्रे में कुछ गड़बड़ का संदेह हुआ और उसने डाट कर पूछा। उसे पहले ही जैसा उत्तर मिला, परन्तु उससे उसका समाधान न हुआ। कहाँ से आवाज़ आ रही यह जानने के लिये वह जिधर तानाजी खड़ा था उधर आने लगा। अंधेरी रात के कारण तानाजी उस मनुष्य को नहीं

देख सकता था। परन्तु तीर चलाने के लिए उसे देखने की आवश्यकता भी थी। वह शब्द-वेध करना जानता था। आहट की दिशा में कान लगा कर उसने तीर छोड़ा जिससे वह मनुष्य धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। वह तीर ऐसी सीध से उसके कलेजे में लगा कि वह वेभाव नीचे गिरा और फिर न उठ सका। अब तानाजी वेधड़क था। तानाजी के पचासों मनुष्य कमन्द और दोनों रस्सियों की सहायता से ऊपर आ पहुँचे।

उन लोगों का पहला काम था भुंभार दरवाजे को रोके रह कर उसके बुर्ज पर अपना अधिकार कर लेना। दूसरा काम था कल्याण दरवाजा खोल देने का। भुंभार बुर्ज पर एक एकचक्रा तोप थी, उस पर अधिकार करना भी जरूरी था। तानाजीने देखा कि यदि राजपूत इस तोप का उपयोग करने लगेंगे तो हम लोगों की बुरी हालत होगी। इस आपत्ति को दूर करने का एकमात्र उपाय यही था कि किसी प्रकार तोप को अपने कब्जे में कर लिया जाए। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ वह अपने मनुष्यों को भुंभार दरवाजे पर लाया। पीछे कहा जा चुका है कि जिस दर्रे में होकर तानाजी अपने मावले वीरों को लाया था उस दर्रे के और भुंभार बुर्ज के बीच में एक दरवाजा था। यह दरवाजा हस्तगत कर भुंभार बुर्ज अपने अधीन करना जरूरी था। इस-लिये सब मनुष्य पहले उसी दरवाजे पर पहुँचे और वहां के सिपा हियों की काट-छाँट करने लगे। उन्होंने "हरहर महादेव" या "जयभवानी माता" आदि किसी प्रकार की गर्जना नहीं की। तानाजी अच्छी प्रकार जानता था कि जय मिलने के लिये दूसरे

स्थानों के शत्रुओं को संदेह होने देना ठीक नहीं है। गर्जना करने से सब गढ़ सावधान होजाता जिससे कल्याण दरवाजा खोल कर अपने भाइयों को अन्दर लाना तानाजी के लिये कठिन हो जाता। तानाजी ने अपने लोगों को बिना किसी शब्द के काम करने के लिये कहा था। उन मावलों ने भी किसी प्रकार की आवाज या श्वासोच्छ्वास तक का शब्द न करते हुए झुंझार दरवाजे वाले शत्रुओं का ज़रा देर में काम तमाम कर दिया।

अकस्मात् यह शैतान की औलाद क्या पृथ्वी के पेट से निकल आई ?—इस प्रकार आश्चर्य करते हुए दरवाजे वाले पठारपाषाण सदृश होकर औचक देखते रह गये। वह अपने शस्त्रास्त्र तक न उठाने पाये। इन लोगों का वध कर मावलों का रक्त विशेष रूप से उत्तेजित हो उठा जिससे वे अत्याधिक क्रूर दिखाई देते थे। झुंझार बुर्ज के चौकीदारों में से कोई नशे में निद्रा ले रहा था, कोई आपस में दिल्लगी कर रहे थे कि इन पचास-वीर मावलों ने उन पर आक्रमण किया। उन लोगों को अपने शस्त्र उठाने या ढूंढने तक का अवसर न मिल सका। उन लोगों की बहुत ही बुरी अवस्था हुई। किसी की बन्दूक भरी नहीं थी, किसी को बारूद का ही पता नहीं था, किसी को कोई और बाधा थी। ऐसी दशा में मावलों का हमला होजाने के कारण उनमें से एक भी मनुष्य जीता न बच सका। इधर एक मावले ने जाकर तोप में कुछ कर दिया जिससे कोई उसे चला न सकता था।

एक बुर्ज पर इस प्रकार की धूम मचा वह मावलामण्डली अब कल्याण दरवाजे की ओर गई। तानाजी ने दरवाजे पर के सब

सिपाहियों को मरवा डाल कर दरवाज़ा खोल दिया और अपने भाई सूर्याजी तथा उसके साथियों की राह देखने लगा। वह जानता था कि हज़ार शत्रुओं के साथ ४६ लोगों का लड़ना मूर्खता है उसने झुंझार बुर्ज जहाँ कि वह एकचक्री तोप थी और दो दरवाजे रोक लिये थे। अब गढ़ के बीच में जाकर लड़ना भाईकी सहायता के बिना संभव नहीं था। अभी तक तो सब काम चुपचाप हो गया परन्तु अब उसका मौका न था। इसलिए उसने अपने साथियों को वहीं दबके हुए बैठे रहने की आज्ञा दी। इन दोनों सङ्कों में केवल एक मावला मारा गया।

दूसरी ओर जगतसिंह घूमता २ बालेगढ़ तक पहुँचा। वहां उसका मित्र विशालदेव मिल गया। जब विशालदेव ने पूछा कि "वी . दिन कहाँ रहे" तो जगतसिंह बोला, "यह समय इस प्रश्न का उत्तर देने का नहीं, पहले कमलकुमारी का हाल कहो।" तब उसको मालुम हुआ कि उदयभानु ने देवलदेवी को जबर्दस्ती कमलकुमारी से अलग कर दिया है और उसे गढ़ के राजमहल में ला रक्खा है। कमलकुमारी वहीं बालेगढ़ के महल में थी। जगतसिंह यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ और उसे निराशा होगई कि अब कमलकुमारी से मिलना असंभव है। वह वहाँ से चल दिया। यद्यपि मध्यरात्रि में अभी देर थी तथापि उसे उदयभानु का विश्वास नहीं था कि वह दो एक घण्टे तक ठहरेगा। इसलिए, तानाजी से मिलने के लिये कल्याण दरवाजे की तरफ वह दौड़ा। उसने अनुमान किया कि इस समय वे लोग कल्याण दरवाजे पर आगये होंगे।

अभ्यास—

१—आत्माभिमानी व्यक्तियों के क्या लक्षण इस परिच्छेद में बतलाये गए हैं? उन्हें तानाजी और जगतसिंह के चरित्र पर घटित करते हुए इस परिच्छेद की प्रारम्भिक परिस्थियों में उनका कार्य निर्धारित करो।

२—कमन्द किसे कहते हैं और उससे किस तरह काम लिया जाता है? यशवन्ती की किस प्रकार पूजा की चरितार्थता को सिद्ध करो।

३—गढ़ पर पहुँचकर तानाजी और उसके लोगों ने कल्याण दरवाजा खोलने तक जो कुछ कार्य किया उसका पूरा २ वर्णन करो।

४—नए हिन्दी तथा उर्दू शब्दों के अर्थ व प्रयोग लिखकर दिखलाओ

—o—

तेरहवाँ परिच्छेद

मध्यरात्रि

बालेगढ़ के एक भवन में कमलकुमारी हताश होकर रो रही थी। ज्यों-ज्यों एक-एक क्षण बीतता था उसकी विडम्बना का समय नजदीक आता जाता था। शायद वह कुछ कर न बैठे, इस भय से उसके ऊपर हबशियों और खोजों का पहरा रक्खा गया था। पहने हुए वस्त्रों से भी वह अपने गले में फाँसी नहीं लगा सकती थी क्योंकि उसके ऊपर उन पहरेदारों की बड़ी कड़ी नजर थी। हबशी तथा पहरेदार इतनी डरावनी सूरत के थे कि बराबर उन्हें देखती रहने से ही वह आधी मर चुकी थी। जब से देवल-देवी से अलग किया गया था, वह सदा आँसू बहाती रहती थी यहाँ तक कि, अन्त में, उसकी आँखों में आँसू की बूंद भी न रह

गई थी। उसकी दोनों आँखें फूल गई थीं। देवलदेवी ही उसका एकमात्र सहारा थी, परन्तु अब वह भी उसके पास न थी अब बेचारी कमलकुमारी बिलकुल असहाय, निरुपाय होकर पड़ी थी, इसी अवस्था में एक पहर रात बीत गई।

आधी रात होने में करीब चार घड़ी और शेष रही कि इसी समय उदयभानु और उसके साथ एक काजी ने उसके महल में प्रवेश किया। उनको देखते ही कमलकुमारी भय के मारे कांपने लगी प्रत्यक्ष मृत्यु को देखकर भी उसको इतना डर न लगता जितना काल से भी कठोर हृदय वाले उस मनुष्य को देखकर उसे हुआ। उसने उठकर खड़ी होने का प्रयत्न किया परन्तु अब उसमें उतनी ताकत नहीं रही थी। बेचारी उसी प्रकार अब आगे क्या होता है, इस प्रतीक्षा में बैठी रही उदयभानु अकड़ के साथ उसके पास गया और कष्ट भरी वाणी में उससे बोला "कमलकुमारी तेरा हमारा विवाह होने में अब केवल दो तीन घड़ी की ही देर है। शादी के समय दुलहन आनन्द मनाती है, परन्तु तू तो यह पगली का सा काम कर रही है। उठो, यह शोक छोड़ दो। यह काजी साहब आए हैं। इनसे पहले इस्लाम धर्म की दीक्षा लो। उसके बाद हम लोगों का निकाह हो जाएगा। क्या अब भी तुम्हें आशा है कि कोई तुम्हें मुक्त करने आवेगा? तुम्हारा भगवान एकलिंग भी यदि इस समय आजाए तो वह तुम्हें मेरे हाथ से न छुड़ा सकेगा। फिर क्यों नाहक अपने मन को दुख देती हो? उठो इधर भी आओ; देखो, ये काजीजी तुम्हारे लिए खड़े हैं।"

उदयभानु अपनी सनक में पड़े मधुर ढङ्ग से बातें कर रहा

था और अपने व्यवहार को बड़ा सौम्य समझता था। परन्तु उसका एक एक शब्द गरम तेल के समान उसके कान में दाह करता हुआ हलाहल विप के समान उसके हृदय में जाकर लगा। वह दिल से चाहती थी कि उदयभानु की खूब भर्त्सना करे परन्तु उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। वेचारी कर ही क्या सकती थी?

इतनी मृदुता से बोलने पर भी कमलकुमारी कुछ उत्तर नहीं देती, यह देख उदयभानु बहुत चिढ़ा। उसने शरीर को पकड़ कर उठाने के लिए हाथ वढाया। यह देख कमलकुमारी एकदम उठ खड़ी हुई, मानों तमाम शक्ति आकर उसमें सहसा संचित हो गई हो। उसने चिल्लाकर कहा, "उदयभानु! तेरे मन में कुछ भी भलमंशाहत या शर्म हो तो मुझे अब अधिक न सता। अब तक मुझमें शक्ति नहीं थी, पर अव शक्ति आगई है। मैं जो चाहूँ सो कर सकती हूँ। मैं अपने शरीर से तेरे दुष्ट हाथ का स्पर्श न होने दूंगी। इससे अच्छा है कि मेरी जान चली जाय।"

कमलकुमारी इतनी फुर्ती से उठी और इतने घुस्से में भर कर वह चिल्लाई कि उदयभानु अवाक हो उसकी ओर देखता रह गया। वृद्ध काजी का हृदय भी कुछ पसीज-सा गया। इसके वाद वह आगे वढ़ा और वोला, वेटी कमल! क्या तू पागल हो गई है? क्या अल्लाह ने यह सुन्दर कोमल शरीर इस लकड़ी के जूते [पादुका] के साथ जलाने के लिए दिया है? या अल्लाह या अल्लाह! ये हिन्दू लोग कितने दिवाने वन गए हैं! देखो बेटी वह उदयभानु शूरवीर, खूब सूरत, तेरी ही जाति का राजपूत है।

इसके साथ व्याह करने से तेरा मर्तबा बढ़ जाएगा। दक्खिन के सूबेदार की तू स्त्री हो जायगी आओ बेटा, यह हठ छोड़दो-मैं तेरा पिता हूँ तू मेरी बात सुन—

'पिता'—यह शब्द सुनते ही कमलकुमारी का धैर्य विचलित हो गया पिताजी। "पिताजी—पिताजी-तुम्हारी प्रिय कमलकुमारी की क्या अवस्था हो रही है, उस दुष्ट बादशाह ने तुम्हारी क्या हालत की होगी? हा भगवान—" इस प्रकार वह विलाप करने लगी। अपने हाथों से सिर को पकड़कर वह बैठ गई। पिता का स्मरण होते ही उसका वह आवेश उतर गया था। उसी समय उदयभानु बोला "कमलकुमारी, अब तुम्हे पिताजी की चिन्ता नहीं करनी चाहिए उन्होंने कभी का स्वर्ग का रास्ता पकड़ लिया है। अब मेरे सिवाय तुम्हें दूसरे किसी का आधार नहीं है। पर आश्चर्य है कि मैं तो तुम्हें अपनाता हूँ और तुम मुझसे भागती जाती हो। तुम्हें मैं अब क्या समझाऊँ। आओ, देखो मैं ही अब तुम्हारा मालिक हूँ।

इतना कह कर उदयभानु बड़ी धीरता से आगे बढ़ा। वह कमलकुमारी को हाथ से उठाना ही चाहता था कि सहसा नीचे से 'तोबा-तोबा' की आवाज सुनाई दी। बड़े क्रोध से उदयभानु कह उठा, "क्या है"? इस समय एक राजपूत सिपाही ने भीतर आकर कहा- 'हजरत! किले में तमाम शैतान के बच्चे इधर उधर फैले हुए हैं। इन शैतानों ने कितने ही आदमियों का खून कर दिया। यह मरहठों की औलाद बड़ी भयंकर है। कैसे आए, किधर आए—कुछ समझ में नहीं आता। और अपने लोग तो

सब भागे जा रहे हैं, एक भी अपने ठिकाने पर नहीं दिखाई देता। कितने ही लोग चट्टान पर से नीचे भाग गए। यदि आप अभी चले चलें तो कुछ बन सकता है, नहीं तो हम सब मारे जाएँगे और गढ़ भी हाथ से चला जाएगा।"

उदयभानु ने इतना लम्बा चौड़ा भाषण आज तक किसी सिपाही के मुख से नहीं सुना था। दूसरे अवसर यदि कोई सिपाही उससे इतना बोलने का साहस करता तो पहले पहल वह उसकी गर्दन उड़ाता। परन्तु यह प्रसंग इतना आकस्मिक था कि कौन क्या कर रहा है वह स्वयं क्या सुन रहा है, इसका उसे विशेष ज्ञान न होसका। खबर देने वाला और भी कुछ बकना चाहता था कि उसने डाट कर कहा, "ओ बदमाश! क्या कह रहा है? कौन मरहठे? कैसे दुर्ग पर आए? क्या मेरे आनन्द के अवसर पर बाधा डालने के लिए ही तू यहाँ आया है? जा भाग यहाँ से! पहले निकाह हो जाएगा, तब हम बाहर आएँगे। काज़ी साहब, आगे आइए और—"

इसी समय 'तोबा! तोबा! अल्लाह! अल्लाह!' की चिल्लाहट फिर सुनाई पड़ी। उदयभानु आगे न बोल सका। वह क्रोध से पागलसा होगया और झुँझला कर कहने लगा—"यह सब फन्द फ़ितूर इस रायजी का ही है! इन काफ़िरों की गर्दन साफ कर कल ही इस रायजी की कौम का सर्वनाश कर डालता हूँ!" क्रोध में भर कर उसने अपनी तलवार खींची और बाहर आ कर देखा। चारों तरफ लोग भागे जा रहे थे—चिल्ला रहे थे। पालेगढ़ के पास बड़ी भीड़ थी और इधर उधर से मरहठों का सिंह-गर्जन "हरहर

महादेव" सुनाई दे रहा था।

अँधेरे के कारण कुछ अच्छी तरह दिखाई नहीं देता था। उदयभानु ने मशालें जलवाने के लिए आज्ञा दी। अपना नाश होते देख उसने एक रण-गर्जना की और अपने राजपूत लोगों को धीरज बँधाया। वह स्वयं अपना पटा घुमाता हुआ बालेगढ़ से नीचे आया—नहीं कूद पड़ा। कमलकुमारी के महल में इस घटना की सूचना देने वाला वह सिपाही क्षण भर के लिये पीछे ठहर गया और धीरे से बोला, "कमलकुमारी, डरोमत, तुम्हारा छुटकारा अभी होगा। इस समय तुम्हारी सखी को छुड़ाने को मैं जाता हूँ।" तदनन्तर वह उदयभानु के पीछे २ चला गया। कमल कुमारी ने उसकी आवाज पहचान ली और हर्ष से ऊपर को मुँह उठा कर देखा। परन्तु इतनी देर में वह बोलने वाला तथा अत्याचारी उदयभानु वहां से अदृश हो गये थे। कापीजी डर के मारे एक कोने में जा छिपे थे।

तानाजी ने कल्याण दरवाजे पर सूर्याजी की सेना की बड़ी प्रतिज्ञा की। किन्तु जब वह उचित समय पर नहीं आई तब उसने चुने हुए लोगों के साथ बालेगढ़ तक मार्ग काटने का साहस किया। उसके साथ जगतसिंह तो था ही। वृद्ध शेलार मामा ने तो इस रात को कमाल ही कर दिया। जब इन लोगों ने इस प्रकार उद्यम किया तो राजपूत सिपाही भी होश में आगए। उन्होंने भी अपने शस्त्र संभाले और लड़ाई आरम्भ की। शूर तानाजी ने आगे बढ़ कर बालेगढ़ तक शत्रुओं को पीटा। इतने में जगतसिंह ने गढ़ के भीतर जाकर सब सिपाहियों को पकड़ा दिया " उदय-

भानु जी कहाँ है ? उन्हें खबर करनी चाहिये । यह गढ़ तो काफिरों ने ले लिया । तोबा: तोबा:। यह सरहठे नहीं बल्कि शैतान हैं—।” इस प्रकार करता हुआ वह कमलकुमारी के महल में जा घुसा और ऐन मौके पर उदयभानु को घबड़ा कर उसने उसके रंग का बेरंग कर दिया । बाद में स्वयं उसके पीछे पीछे बाहर आकर सीधा देवलदेवी के महल में जाने के लिये चला, परन्तु उसे कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया ।

अब तो सूर्याजी और उसके साथी ऊपर आगये थे और राजपूत भी तैयार हो गये थे । बालेगढ़ के आस-पास एक हलचल मची हुई थी । मनुष्य से मनुष्य भिड़े हुए थे । तलवार का संगीत हो रहा था । बाणों की सूँ—सूँ फुँकार होती थी । कई राजपूतों के बायें हाथों में मशालें थीं और दाहिने हाथों में तलवारें—क्योंकि अँधेरे में वे एक दूसरे को देख नहीं सकते थे और वे वैसे ही, एक हाथ से, लड़ रहे थे । इस उजाले का लाभ मरहठों ने उठाया । बालेगढ़ और कल्याण दरवाजे के बीच में भैरोंनाथजी के मन्दिर के पास उदयभानु और तानाजी का युद्ध चल रहा था । दोनों को अपने अपने कौशल की पराकाष्ठा से लड़ते हुए जगतसिंह ने देखा । तानाजी और उदयभानु दोनों युद्धकला-विशारद थे । उनका युद्ध देख कर जगतसिंह विस्मित हो वहीं खड़ा रह गया । तलवार के हाथ नहीं चल रहे थे, बिजलियाँ दौड़ रही थीं । ढालों के ऊपर खच् खच् चोटें पड़ रही थीं । अन्य चारों तरफ भी ऐसा ही युद्ध हो रहा था । उभय पक्ष अपने अपने लोगों को धीरज बँधा कर उत्तेजित कर रहे थे और उनके मुख से उत्साह बढ़ाने

वाले शब्द निकल रहे थे।

तानाजी और उदयभानु में एक दूसरे को परास्त करने के लिये पूरी होड़ लगी हुई थी। नाटक के वीरों के सदृश वे ललकारते थे, परन्तु कोरे शब्दों की वृष्टि नहीं करते थे। वल्कि दाँतों से होठ चबा चबा कर, बाहु के बल से और पैंतरे बदल बदल कर वे अपने खड्गों द्वारा एक दूसरे का संहार करने पर तुले हुए थे। जख्मों से उनका शरीर भर गया था और रुधिर की धाराएँ बह रही थीं। इतने में उदयभानु की तलवार के एक आघात से—बड़ा भयानक वह आघात था। तानाजी की ढाल टूट गई। ऐन मौके पर दूसरी ढाल कैसे मिल सकती थी। वह दाहिने हाथ से पटा फेर कर शत्रु का वार चुकाता था और बाँए हाथ से कमर में कसा हुआ दुपट्टा खोलकर उसे अपने हाथ मे लपेट कर उसने ढाल बनाई। परन्तु इस उपाय से कहाँ तक निर्वाह होता। उदयभानु ने शत्रु के संकट से लाभ उठाने की कोशिश की पर उसे तत्काल यश न मिल सका। जगतसिंह ने देखा कि अब थोड़ी ही देर में तानाजी गिर जाएगा। अतएव वह अपनी दिशा बदल कर उन दोनों की ओर जाने का मार्ग देखने लगा। उदयभानु ताजे दम का था, उधर तानाजी लगभग एक पहर से जी तोड़ कर लड़ रहा था, इस लिये तानाजी की सहायता को जगतसिंह ने जाना उचित समझा। इतने ही में उदयभानु की तलवार तानाजी के दाहिने हाथ की कुहनी पर जा गिरी जिससे उसका वह हाथ कट गया। हाथ का कटना देखकर उदयभानु ने गरदन के पास एक और वार किया और तानाजी को गिरा कर एक तीसरा वार

कलेजे के ऊपर मारा। वह वार मर्म पर पड़ा और तानाजी ने—"हाय महाराज" आपकी सेवा पूरी न हो सकी। आज ही आप की सेवा का ऋणानुबंध टूट जाता है। ईश्वर की ईच्छा!" कहते कहते प्राण छोड़ दिये।

अपने प्रतिपक्षी को इस प्रकार गिरा कर भी उदयभानु को संतोष नहीं हुआ। उस दुष्ट की इच्छा हुई कि उसके पवित्र शव को पैरों से लिथेड़े और उसने अपने भ्रष्ट मुख से ये अप-शब्द कहे—"ऐ काफ़िर, जा, नरक में जाकर गिर। शैतान के राज्य में चला जा और उसे जाकर बतला कि मैंने तुझे वहाँ भेजा है।" इस प्रकार चिल्लाते हुए उसने शव को ठुकराने के लिए अपना पैर उठाया परन्तु इसी समय किसी तलवार की एक भयंकर चोट से उसके पैर के दो टुकड़े हो गए। साथ ही उसके कानों में यह शब्द पड़े "अरे दुष्ट! राजपूतों के कुल में जन्म पाकर भी कितने नीचता के कर्म तू अभी करेगा? समरांगण में जिसके साथ चार घड़ी तूने हाथ से हाथ मिलाया उसके शव की बंदना करने के स्थान में तू उसे लिथेड़ने के लिये पैर आगे बढ़ाता है! जरा इधर को मुँह कर। अपनी शूरता मुझे भी देखने दे।"

ये शब्द सुनते ही उदयभानु ने मुँह उठा कर देखा, परन्तु बोलने वाला मनुष्य परिचित सा न मालूम हुआ। उसकी मेवाड़ी भाषा से वह राजपूत अवश्य प्रतीत होता था। मरहठों की ओर से वह लड़ रहा है और उनका पक्ष ले रहा है—यह है कौन? उदयभानु न जान सका जगतसिंह को उसने कभी नहीं देखा था। वह समझा कि अपनी सेना का कोई सिपाही पागल होकर विप-

रीत बदला लेने आया है। यह कह उसे गालियाँ सुनाने लगा। परन्तु जगतसिंह ने हँस कर कहा, 'उदयभानु, मैं नहीं जानता था कि तेरी वीरता अपशब्द सुनाने में तथा सती होती हुई किसी स्त्री को रोक कर उसका पतिव्रत्य भंग करने में ही है। परन्तु आज यह बात सिद्ध सत्य हो गई। फिर इस तलवार की जरूरत ही क्या है? फेंक दो इसे।"

जगतसिंह का यह कटु भाषण उदयभानु कसे सह सकता था? 'फेंक दो'—ये शब्द सुनते ही उसने जगतसिंह पर तलवार का हाथ चलाया और मुख से मरहठों को काफिर होने के कारण गालियाँ सुनाने लगा। जगतसिंह केवल तिरस्कार से हँस पड़ा। वह सावधान था। वार को ढाल पर लेकर उसने अपनी रक्षा की और दोनों में युद्ध शुरू हुआ। जिस प्रकार का तानाजी और उदयभानु में युद्ध हुआ था, बिलकुल उसकी पुनरावृत्ति अब हो रही थी। भेद केवल इतना ही था कि इस समय उदयभानु का मुख अपशब्दों से भरा हुआ था।

तानाजी मारा गया, यह समाचार दावानल के समान फैल गया। शेलरमामा इसे सुनकर खोज करता वहाँ आया जहाँ उदयभानु और जगतसिंह लड़ रहे थे। उदयभानु और जगतसिंह भिड़े हुए थे और उदयभानु चिल्ला रहा था, "जैसे उस तानाजी को नरक में पहुंचाया है वैसे ही तुझे भी पहुँचाऊँगा।" इस पर जगतसिंह गर्ज कर कहता था, "देखें, कौन किसको नरक में भेजता है—तू या मैं?"

'तानाजी' और 'नरक'—ये शब्द सुनते ही शेलरमामा का

उद्वेग और सन्ताप उभर आया। वह दोनों के बीच में पहुँच कर जगतसिंह से बोला, "जगतसिंहजी ! मेरे वीर भाँजे को मारने वाले इस दुष्ट को दण्ड देने का कर्तव्य मेरा है। तुम हट जाओ, मरहठा वीर अस्सी वर्ष की अवस्था में भी किस प्रकार अपनी हड्डियों में बल रखता है, यह मतवाला कुल कलंक देख ले। ओ दासी पुत्र, इधर आ।" इतना कह कर क्रोधोन्मत्त सिंह की भाँति शेलारमामा उदयभानु के ऊपर झपटा। उसका वह क्रोध और वेग देखकर जगतसिंह हट गया। उदयभानु भी क्षण भर के लिए विस्मित रह गया। शेलारमामा के पटे के एक तड़ाके से वह होश में आया और अस्सी वर्ष के वृद्ध के साथ तीस-पैंतीस वर्ष के युवक का युद्ध आरम्भ हुआ।

तानाजी का युद्ध में अन्त हुआ, यह खबर जैसे-जैसे फैलने लगी वैसे-वैसे मरहठे वीरों का धैर्य लुप्त होने लगा और राजपूत जोर करने लगे। जिस ओर से रस्सी, कमन्द आदि की सहायता से ये लोग ऊपर आए थे उस ओर अब सूर्याजी लड़ रहा था और येसाजी कल्याण दरवाजा रोके हुए था। मरहठे इतने धैर्य विचलित हो गए थे कि रस्सी की सहायता से उसी मार्ग से भागने के लिए वे उधर दौड़ने लगे। उन्हें भागते देख राजपूतों ने उनका पीछा किया। सूर्याजी तानाजी का हाल सुनकर भी अपने पूरे उत्साह से युद्ध कर रहा था। परन्तु जब उसने देखा कि तानाजी के पतन के समाचार से ये लोग भागे जा रहे हैं तो उसने पहले जाकर उन रस्सियों को काट डाला और फिर वहीं खड़ा होकर अपने मावला लोगों से बोला—"जाओ नामर्दो ! मरो, नीचे

कूद कर मर जाना चाहते हो तो मरो। मैंने रस्सियों को काट डाला है। वह तुम्हारा बाप वहाँ मरा पड़ा है। उनको इन महरों (नीच लोगों) के हाथ कुत्ते की गति मिलेगी-इसका भी कुछ विचार करो।"

सूर्याजी के इन हृदयभेदी शब्दों ने उन लोगों के ऊपर जादू का असर किया। गढ़ पर से नीचे कूद कर मर जाने या लड़ते हुए गढ़ लेकर मरना—ये दो बातें उनके सामने उपस्थित हुईं। इधर शेलारमामा उदयभानु के साथ लड़ता हुआ अपने लोगों को फटकार रहा था। उस बूढ़े की वीरता को देखकरभागने वाले मरहठे लज्जित हुए और सहसा लौटकर पीछा करने वाले राजपूतों पर टूट पड़े। इतने में बूढ़े के पटे का एक वार उदयभानु की कनपटी पर पड़ा, जिससे रगें कट जानेके कारण उदयभानु पृथ्वी पर लोट गया।

उदयभानु के गिरने की वार्ता भी तुरन्त फैल गई। इधर ऐसी सूचना मिली कि मरहठों के और भी लोग ऊपर चढ़ रहे हैं। अपना नेता गिर पड़ा है- उसके स्थान पर कोई नहीं है-मरहठों की सेना बढ़ रही है-यह सोचते ही अब राजपूतों की वैसी ही दशा हुई जैसी थोड़ी देर पहले मरहठों की हुई थी। राजपूत भागने लगे। मरहठों के तीन विभाग होने के कारण वे जिधर भागते, उधर ही उन्हें मरहठे दिखाई देते। कल्याण दरवाजे की तरफ गए तो वहाँ नेताजी अपने थोड़े से सिपाहियों के साथ मौजूद था। उसने कितने ही राजपूतों को मारा। बीच में शेलारमामा सिंह की भाँति गर्ज रहा था। सूर्याजी चारों ओर घूम रहा था। पीछे से मरहठे जोर कर रहे थे। ऐसी अवस्था में बेचारे हताश राजपूत क्या करते? कोई तो गढ़ से नीचे कूद पड़े, कोई हिम्मत हार कर

शस्त्र फैंक कर बैठ गये। अन्त में सूर्याजी ने जगतसिंह के द्वारा घोषणा करवाई कि, "जो कोई शस्त्र फेंक कर शरण में आवेगा उसे हानि नहीं होवेगी।" इस बार सब राजपूतों ने अपने शस्त्र लाकर सामने रक्खे और रूमाल से हाथ बाँध कर प्रणाम किया। सूर्याजी ने उन्हें अभयदान देकर अपने २ स्थानों पर बैठने को कहा। गढ़ पर अधिकार होजाने का समाचार महाराज को देने के लिए शेलारमामा ने येसाजी से कह कर घास के एक ढेर में आग लगा दी।

तानाजी की अकालमृत्यु से उत्पन्न हुआ दुःख अपने वीरोचित कर्म में लगे रहने के कारण उन दोनों ने अभी तक किसी प्रकार रोक रक्खा था। परन्तु अब शान्ति स्थापित होजाने के बाद जब वे आपस में मिले तो उनसे वह शोक न रोका गया और उनके आंसू बह चले। सूर्याजी तो तानाजी का भाई ही था और उसी प्रकार शेलारमामा उसका मामा था। अतः इन दोनों को तो शोक होना स्वाभाविक था ही। परन्तु उस समय मालूम होता था कि सब से अधिक दुःख जगतसिंह को हुआ है।

अभ्यास—

१–कमलकुमारी की इस समय क्या अवस्था थी? उसके साथ उदयभानु तथा काज़ी की जो बातचीत हुई उसका सार देकर, फिर उसे छोटे२ कथोपकथनों का रूप देकर, अपनी भाषा में अपने ही ढंग से लिखो।

२–उदयभानु और कमलकुमारी की भेट के समय क्या विघ्न उपस्थित हुआ? विघ्न डालने वाला कौन था, उसने क्या कहा, और बाद में क्या किया? उदयभानु ने उससे क्या कहा और क्या किया?

३–उदयभानु, तानाजी, जगतसिंह तथा शेलारमामा के युद्धों का वर्णन करो।

४–दूसरे मोवलों, येसाजी, सूर्याजी आदि का गढ़ पर अधिकार करने में क्या हाथ था सो विस्तृत रूप में समझा कर लिखो। फिर संक्षेप में पूरे युद्ध का एक सिलसिलेवार वर्णन करो।

चौदहवाँ परिच्छेद

महाराज

तानाजी महाराज की आज्ञा तथा जीजाबाई का आशीर्वाद लेकर जिस दिन निकला उसी दिन से प्रति दिन का वर्णन उनके पास भेजना वह कभी न भूलता था। परन्तु अन्त के चार पाँच दिनों की घटनाएँ इतनी शीघ्रता से हुईं कि उनकी खबर भेजने के लिए तानाजी को बिलकुल अवसर ही नहीं मिला। उसके पास कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं था कि जिसके हाथ वह पत्र लिखवा कर भिजवा देता। चारण के वेश में शत्रु के स्थान में जाकर किस प्रकार वहाँ के लोगों को वशमें किया तथा अब गढ़ लेना कितना सुलभ था—यहाँ तक का समाचार तो वह भेज चुका था, परन्तु इसके आगे का वृत्तान्त महाराज को विदित नहीं था। प्रति दिन रात को वह गढ़ की ओर देखते थे और समाचार न मिलने पर इस प्रकार समाधान कर लेते थे कि शायद कोई और घटना ही नहीं हुई होगी, या शायद घटनाएँ इतनी जल्दी २ हुई होंगी कि सूचना देने का तानाजी को अवसर ही न मिला हो। परन्तु दो दिन तो इस प्रकार समाधान हुआ, तीसरे दिन यह समाधान कठिन था, क्योंकि तानाजी शिवाजी महाराज की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया करता था। उनकी आज्ञा के बाहर वह कभी ज़रा भी नहीं जाता था। उसका हरेक काम नियमित था। प्रति दिन का हाल पत्र द्वारा या जासूस के मुँह से उनके पास बराबर भेजते रहने की वह उनसे प्रतिज्ञा कर आया था।

जब तीन दिन तक कोई खबर न मिली तो महाराज को चिन्ता हुई। शायद कुछ धोका या दगाबाजी हुई हो। सम्भव है वे लोग ऊपर से विश्वास दिलाकर तानाजी को उदयभानु के पास लिवा गये हों और उस दुष्ट ने मौका पाकर उसे चट्टान पर से नीचे गिरवा दिया हो। यदि ऐसा न होता तो तानाजी किसी प्रकार अवश्य समाचार भेजता। तानाजी हर प्रकार के हुनर जानता था। किसी की नकल वह अच्छी तरह से बना लेता। उसकी वाणी इतनी मधुर थी कि हर किसी का मन आकर्षित कर लेता। बचपन से उसने कितने नए नए वेष धारण कर कहां कहाँ प्रवेश किया था यह सब महाराज को विदित था। कभी गोसाईं का, कभी वंशी बजाने वाले का, कभी किसी वृद्धा का भेष बनाकर वह अनेक बार दूसरों का भेद लाया था। महाराज को उसका स्मरण हुआ। जब महाराज ने उसके पत्र में पढ़ा कि उसने चारण के रूप में अमुक कवित्त सुनाकर पहले लोगों को उत्तेजित किया और फिर उन्हे मिला लिया, तथा बाद में जब उन्होंने वह कवित्त भी पढ़ा, तो वह विस्मत हो गए। जब वह पत्र उन्होंने जीजाबाई क सुनवाया तो वह भी विस्मित हुई। उनके नेत्रों में आनन्द के अश्र भर आये और उन्होंने महाराज से कहा "देखो शिवाजी, इस प्रकार भेष बनाकर यह शत्रुओं के डेरों में घूमता और उनमें भेद लेता फिरता है—क्या इसे डर नहीं कि यदि कोई मुझे पहचान लेगा तो मरवा डालेगा? देखो कैसा कवित्व है! अब जब वह वापिस आएगा तो उससे कहूँगी, 'आओ चारणजी,' और उससे वह कवित्त जरूर सुनूंगी शिवाजी, तुम्हारे ऊपर उसकी अच्छी श्रद्धा है।"

इस पर महाराज बोले, "माताजी, मैं क्या इसे नहीं जानता! मैं भली भांति जानता हूँ कि मेरी विस्तृत परिवार-मण्डली में यदि कोई अपनी जान देकर मेरी जान बचाने वाला है तो वह केवल तानाजी है। जिस समय तोरण गढ़ पर अधिकार किया था तभी से मैं उसे देख रहा हूँ। संकट समय में वह मुझसे कहा करता, "शिवाजी तू पीछे होजा। मुझे आगे बढने दे"—उस समय वह एक वचन में ही मुझसे बोला करता था। अब अनुरोध करता हूँ तो भी उस तरह नहीं कहता। श्रीधर स्वामी जी को पुरन्दरगढ़ से मुक्त करने के लिए वह स्वयं बढ़ रहा था, परन्तु मैंने ही उसे नहीं बढने दिया। अफजल खां के सामने जाने के समय उसने कहा, "यदि वह तुम्हें नहीं पहचानता है तो मुझे ही अपनी बजाय जाने दो। अगर कुछ चालबाजी करेगा तो मैं देख लूंगा।" जिस समय मैं दिल्ली से निकला उस समय भी उसका यही कहना था, वहाँ भी यही स्थिति थी। संकट के समय मुझे पीछे करा कर हमेशा अपनी गर्दन आगे बढ़ाने का ही उसका यत्न रहता है। जब तक वह मेरे पास में है तब तक मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि जब उसने एकबार कोई कार्य करना स्वीकार कर लिया तब मुझे उस ओर देखने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इतना सब कुछ करके भी वह यह कहे कि मैंने यह किया, मैंने ऐसा किया—सो बात नहीं है। तानाजी की तो बात ही न्यारी है।"

आज मुझे चैन नहीं पड़ता। तृतीया तक की खबर मुझे मिली है। आज नवमी है। चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी और अष्टमी इन पांच रोज़ की कोई खबर नहीं मिली। उसी के भरोसे पर रह कर मैंने कोई जासूस भी नहीं भेजा। आज सुबह से ही मेरे हृदय में चिन्ता सी व्याप रही है। क्या कारण है इसका, कुछ समझ में नहीं आता। आज के दिन और राह देखता हूँ-नहीं तो सायंकाल होते ही कौंडाणागढ़ पर चला जाऊंगा। वह अगर संकट में होगा तो खुद मुझे ही जाना चाहिए। गढ़ लेने के उद्योग में भी उसे मेरी सहायता की ज़रुरत होगी। यहां खाली मक्खी मारने से लाभ ही क्या ? वहीं जाने से सब कुछ मालूम होगा। मुझ से अब नहीं रहा जाता।"

कहने को महाराज भाषण कर रहे थे अपनी माता जी से, परन्तु वास्तव में उनकी बात चीत आत्मगत ही थी। यह संदेह होते ही कि अपना परम मित्र और एकनिष्ठ सेवक संकट में फँसा है महाराज ने संकल्प किया कि अब खाली बैठने से प्रयोजन नहीं। उसकी रक्षा के लिए उसको सहायता देने को जाना आवश्यक है। जैसे तानाजी अपने स्वामी का परम भक्त था वैसे ही महाराज भी अपने सच्चे सेवक के परम भक्त थे।

महाराज का आत्मगत भाषण सुन जीजाबाई का विचार हुआ कि वह बेकार घबड़ा रहे हैं—जाने का वास्तव में कोई कारण नहीं है। परन्तु ऐसी बातों में जीजाबाई का कोई वश नहीं चलता था। जब एक बार महाराज ने निश्चय कर लिया कि अमुक कार्य ठीक है और करना चाहिए तो वह वैसा ही करते

और डुपट्टे के ऊपर अपना किरीट रक्खा जिसे वह सदा लगाया करते थे। हाथ में व्याघ्र नख धारण कर एक पटा भी अपने साथ लिया। पीठ पर ढाल बाँधी और तब दोनों सरदार पन्द्रह बारगीर और बालाजी आबजी चिटनवीस के साथ महाराज की सवारी कोंडाणागढ़ को जाने के लिए बाहर निकली।

महाराज की सवारी कभी भी बड़े समारम्भ से नहीं निकला करती थी उस पर भी आज तो चुपचाप खबर लेने के लिए ही जाना था। महाराज जब निकले तो सोलह घड़ी रात्रि बीत चुकी थी। राजगढ़ कोंडाणागढ़ से लगभग बारह या तेरह मील के फासले पर है। यदि तेजी से यह मण्डली जाती तो आधे पौने प्रहर के भीतर ही गढ़ की सीमा पर जा पहुँचती। किन्तु उतनी जल्दी करने का उनके लिए कोई कारण नहीं था। साथ में इतने लोग होने पर भी महाराज चुपचाप थे। वह धीरे धीरे चल रहे थे। उनके आगे एक सरदार और पांच बारगीर थे। लगभग आधा मार्ग तय किया होगा कि आगे चलने वाला एक बारगीर चिल्ला उठा, "महाराज, कोंडाणागढ़ के इधर, पूरब की ओर आग दिखाई देती है"। महाराज ने देखा तो सचमुच आग थी। शेलारमामा कह गया था कि किसी नियत स्थान पर आग लगायेंगे। उसके अनुसार जब निश्चय होगया कि ठीक उसी दिशा में आग जल रही तो महाराज के मुख से सहसा उद्गार निकल पड़े—"तानाजी, धन्यवाद है तुम्हें ! सचमुच तुम शूरवीर के बेटे हो।" इतनी देर तक जो भार-सा उनके हृदय पर था वह मानो अब दूर होगया और वह इस दुविधा में पड़ गये कि अब आगे जाएँ या वापिस राजगढ़ को ही लौट चलें। इसी बीच में

वे उस गांव में आगए जहां जासूस को मिलने के लिए उन्होंने आज्ञा दी थी। उसका राह देखकर उसकी सूचना के अनुसार कार्य करने का निश्चय हुआ और उन्होंने विश्रान्ति की इच्छा से आम के घने पेड़ों की छाया में बैठने के लिये उस ओर घोड़ों का मुँह मोड़ा। नौकरों ने स्थान साफ करके वहां आसन बिछाए और मशाल जला दिए। महाराज का चेहरा, जो रास्ते भर म्लान था, इस समय खिल गया था और वह चिटनवीस तथा हिरोजी फर्जन्द से बोले, "यह गढ़ अपने हाथ में आजाने से बड़ा भारी काम बन गया। बादशाह ने सुलह के अतिरिक्त दूसरा उपाय न देखकर मैंने यह गढ़ और पुरन्दर, दोनों, उसको देना स्वीकार कर लिया था। उसने मुझे पूना, सासवड़ और सूपे के प्रांत तो दे दिये परन्तु उनमें जो गढ़ हैं उन सब पर अपना ही अधिकार रक्खा। क्या मैं उसके भीतरी अभिप्राय को नहीं समझता था? पर मैं कर ही क्या सकता था? जसवन्तसिंह और जयसिंह ने बहुत कुछ आग्रह किया कि इस समय यह संधि स्वीकार करलो, फिर बाद में इसके ऊपर अच्छी तरह विचार कर सकते हो।

शिवाजी महाराज सामान्यतः मितभाषी थे। जो मनुष्य कार्य करने वाले हुआ करते हैं वे प्रायः थोड़ा ही बोलते हैं। महाराज का स्वभाव भी ऐसा ही था। आज महाराज का इतना लम्बा भाषण सुन उस मंडली के लोगों को आश्चर्य हुआ। परन्तु आजकी बात ही और थी। इतनी देर से चिन्ता से उनका हृदय व्याप्त था। उन्हें नहीं मालूम था कि आधे रास्ते में गढ़ पर अधिकार होने की सूचना मिलेगी। उन्हें भय था कि गढ़ लेने में कोई संकट अवश्य उपस्थित हुआ होगा और तानाजी किसी धोखे का शिकार बना होगा। वह भय निर्मूल हुआ और हृदय पर का बोझ हट गया। ऐसी अवस्था में आनन्द के तथा तानाजी के सम्बन्ध में प्रेम और आदर के ये उद्गार स्वाभाविक रूप से उनके मुँह से निकल पड़े।

इस भांति लगभग चार घड़ी और बीत गई। प्रभात हुआ और मुर्गों का बोल सुनाई देने लगा। ग्रामीण स्त्रियां अपनी अपनी चक्कियां चलाती हुई गारही थीं। चन्द्रमा निस्तेज था और पूर्व की ओर रक्तच्छटा दिखाइ देरही थी। महाराज अपने जासूस की प्रतीक्षा में थे परन्तु उसका अभी तक पता नहीं था। महाराज को फिर से चिन्ता उत्पन्न हुई। क्या वह आग नहीं थी, मिथ्या आभास ही था? एक बार यदि यह भी मानले कि वह आग ही थी तो भी यह कैसे कहा जा सकता है कि वह विजय की ही निर्देशक थी। संदेह होते ही उन्होंने फिर इरादा किया कि धीरे धीरे कल्याण की ओर चलें-वहां पहुँचकर कुछ खबर मिल ही जायगी। अतएव, जासूस की या अन्य किसी की प्रतीक्षा छोडकर वह मंडली फिर रवाना हुई। थोड़ा सा चक्कर काट कर वे

कल्याण की ओर पहुँचे तो गांव भयाकुल सा दीख पड़ा । किसी गांव वाले को बुला कर पूछा कि यह क्या हालत है ? उसे कुछ संतोषप्रद वृत्तान्त मालूम नहीं था । उसने उत्तर दिया, "रात्रि को गढ़ पर जरूर कुछ हलचल मची थी । कोई कहते हैं कि मरहठों ने गढ़ को लेकर उदयभानु को मार डाला, कोई कहते हैं कि उदयभानु ने तानाजी को मारकर सब मरहठों का विध्वंस कर दिया असल बात क्या है और क्या नहीं—इसी भय से तमाम गांव घबड़ा उठा है । अभी तो कोई नीचे आया नहीं है, फिर, क्या खबर है सो भगवान ही जाने ।"

परन्तु महाराज का एक ही उत्तर था—"जिस भवानी माता ने दिल्ली में मुग़लों के हाथ से बचाया क्या वही मुझे अब न बचाएगी ? तानाजी को संकट में छोड़कर लौटाना ठीक नहीं। इतना कहकर उन्होंने कृष्णा घोड़ी के कोड़ा लगाया और बात की बात में वे गढ़ के तले पहुँचे। देखते हैं तो वहां मरहठों का पहरा लगा हुआ है। पहरेदारों ने खड़ी ताजीम से स्वागत किया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि गढ़ दो पहर रात को हाथ में आगया था। परन्तु जय का हर्ष किसी की मुख पर झलकता हुआ दिखाई नहीं दिया। महाराज फिर संदेह में पड़े। उनका वाम नेत्र फड़फड़ाने लगा। किसी अनिष्ट की आशंका से वह और कुछ पूछ ताछ न कर गढ़ पर चढ़ने लगे। जगह जगह पर चार-चार पांचर मावले लोग बैठे हुए थे। महाराज को पहचान कर वे लोग प्रणाम करते परन्तु फिर सिर नीचा कर लेते। किसी का साहस न होता कि तानाजी की मृत्यु की बात कहें। महाराज सीढ़ियों पर चढ़ने लगे तो सर्वत्र रुधिर मय दिखाई दिया। दरवाज़े में होकर भीतर गए तो तमाम भूमि लाल हो रही थी। जगह जगह टंकियों का पानी भी लाल था। वह तमाम दृश्य बड़ा भयानक था। सब राजपूत सैनिक नि.शस्त्र कर बुर्ज के एक तरफ बैठे थे। महाराज के आगे आते ही, मानों अन्तः-प्रेरणा से, उन्होंने उस महान् विभूति को प्रणाम किया। उन के प्रणाम को स्वीकार कर महाराज आगे बढे। जगह जगह पड़े हुए शवों में से अधिकांश राजपूतों के थे। परन्तु तानाजी सूर्याजी या शेलारमामा में से कोई भी नहीं दिखाई दिया। जरा और आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक शव पर सुफेद वस्त्र डालकर सूर्याजी और शेलारमामा बैठे हुए थे। महाराज मन में शंकित हो कुछ ठिठक कर आगे बढ़े। शेलारमामा ने उन्हें देखा और वह चिल्लाता हुआ दौड़ा—"महाराज ! हाय, मेरा तानाजी चला गया।" उस वृद्ध के ये हृदय-भेदी

कमलकुमारी यह समाचार सुनते ही रोती-चिल्लाती हुई वहां आगई। शिवाजी महाराज का आगमन सुन उसने हाथ जोड़ कर जगतसिंह से कहा, "जगतसिंहजी, मेरे कारण ही तुम्हारा सर्वनाश हुआ है। किस मुंह से मैं तुमसे कोई प्रार्थना कर सकती हूँ। परन्तु मेरा यह अन्तिम अनुरोध है। जिस भांति तुमने मुझे इस दुष्ट के हाथ से बचाया है उसी भांति अब तुरन्त मुझे सती होने की आज्ञा दिलवा दो। शिवाजी महाराज हिन्दू धर्म के संरक्षक हैं। वह अवश्य ही सती को यह भिक्षा दान करेंगे।, अस्वीकार नहीं करेंगे।"

उसकी यह प्रार्थना सुन जगतसिंह दहल गया और वह चुप चाप वहां से निकलकर बाहर आया। तदन्तर महाराज से भेंट कर उसने अपना हाल सुनाया। उसने यह भी बताया कि ताना जी ने पिछली रात में बारह बजने से पहले ही गढ़ पर क्यों अधिकार किया। वृतान्त सुनाकर उसने कमलकुमारी के सती होने के लिए अनुमति मांगी। महाराज ने तत्काल ही अनुमति नहीं दी और कहा "देखो, यदि उसका मन बदल सके तो जान देना उचित नहीं। यह कठिन काम है।" परन्तु कमलकुमारी का निश्चय दृढ़ था—वह भला कैसे मान सकती थी। उसने शिवाजी के पास पुनः सन्देश भेजा—"महाराज, मैं अभागिनी हूँ। मेरे लिए जान देना कठिन नहीं है। मेरे पति स्वर्गवासी हैं। अनेक दुःख सहन करने के बाद मेरे पिता की मृत्यु हुई। संकट में साथ देने वाली मेरी सखी इस प्रकार चली गई। अधिक क्या कहूँ !- मेरी मुक्ति करने वाला केवल पचास मनुष्य साथ में लेकर हजार राजपूतों पर टूट पड़ने वाला सरदार भी नहीं रहा। वहां वह

सकती कि इस जगत में मेरे रहने से कितने अनर्थ होंगे। मुझे सती होने देंगे तो मैं आशीर्वाद दूंगी और मुझे भी पुण्य होगा। मेरे लिए दु:ख मनाने को इस संसार में कोई नहीं है। इतने पर भी यदि आप आज्ञा नहीं देंगे तो मेरी सखी का उदाहरण सामने है ही।"

उसका ऐसा दृढ़ निश्चय देख महाराज ने सती होने की उसे आज्ञा दे दी और तयारी करने के लिये बालाजी से कहा। कल्याण से एक ब्राह्मण उपाध्याय को बुलवा भेजा। कमलकुमारी ने इच्छा प्रकट की कि अपनी सखी को अग्नि दिलाने के अनन्तर ही मैं अग्नि प्रवेश करूँगी। उसके अनुसार पहले देवलदेवी की चिता बनाई गई। देवलदेवी के शव को उठाते समय कमलकुमारी सहसा रो उठी—"हाय, देवल ! मुझे अग्नि प्रवेश कराने में सहायता देने तू आई थी। मुझसे पहले ही चल बसी हाय !"

कमलकुमारी का यह विलाप सुनते ही तमाम उपस्थित जनों का हृदय विदीर्ण हो गया। देवलदेवी की चिता का अग्नि संस्कार हो जाने के बाद, एक राजपूत स्त्री से अर्चन आदि संस्कार करा कर कमलकुमारी चिता प्रवेश करने के लिए धर्म की शिला पर खड़ी हुई। आज तक जिन पादुकाओं को उसने हृदय से लगा रक्खा था वे अब भी वहीं थी। उपाध्याय मंत्र पढ़ रहा था और वह शान्ति से सुन रही थी और उसके कथनानुसार ही करती जाती थी। तदनन्तर महाराज ने उसके चरणों पर मस्तक नवाया और उनके बाद दूसरे लोगों ने भी वैसा ही किया। फिर गम्भीर वाणी में "एकलिंगजी तुम सब का कल्याण करें, प्रत्येक कार्य में यश दें" यह आशीर्वाद देकर उसने चिता में प्रवेश किया। एक भी

उच्छ्वास या सिसकी उस चिता में से नहीं सुनाई दी, मानों उसी चिता में उसका पति उसे मिल गया हो और उसी के आनन्द में वह एकदम समा गई हो।

उस भीड़ में जगतसिंह कहीं अदृश्य हो गया। बहुत खोज करने पर भी वह नहीं मिला। उदयभानु का जनानखाना राजपूत सैनिकों के साथ कर महाराज ने दिल्ली को रवाना करवा दिया और उस काजी को औरङ्गाबाद भिजवा दिया।

जिस दरी में से तानाजी ऊपर चढ़ कर आया था उसका तट बाँध कर बन्द करने का महाराज ने हुक्म दिया जिससे कि दूसरा कोई ऊपर न चढ़सके। तब बालाजी आवजी ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज आज्ञानुसार तट बँधवा दिया जाएगा। परन्तु सब लोगों की इच्छा है कि जिस स्थान पर तानाजी की मृत्यु हुई है वहाँ उनकी एक समाधि बनवा दी जाए। इसके सम्बन्ध में महाराज की आज्ञा ही प्रमाण है।"

क्यों नहीं? अवश्य। महाराज ने जोर के साथ कहा, "पर चिट नवीसजी इस चूने-पत्थर की समाधि से तानाजी का क्या होगा। उसका सच्चा समाधि-स्थान तो मेरा हृदय है। अस्तु, तानाजी की समाधि के साथ ही उदयभानु की भी एक कब्र बनवा देनी चाहिये।"

तानाजी की समाधि, सती की मूर्ति, और उदयभानु की कब्र भी उस गढ़ में विद्यमान हैं।

तानाजी की मृत्यु के तेरह दिन बाद महाराज ने स्वयं उमराठे ग्राम में जाकर अच्छे मुहूर्त में रायबा की शादी करवाई और सूर्याजी को सिंहगढ़ का संरक्षक बना कर अनेक ग्राम उसे इनाम में दिए।

❀ समाप्त ❀

जगदीशप्रसाद शर्मा द्वारा कमल प्रिंटिंग प्रेस जयपुर में मुद्रित